आनंद गंगा

1.जिज्ञासा का लोक.

एक अंधेरी रात में एक युवक ने एक साधु से पूछा कि क्या आप मुझे सहारा न देंगे अपने गन्तव्य पर पहुंचने में?

गुरु ने एक दीया जलाया और उसे साथ लेकर चला। और जब वे आश्रम का द्वार पार कर चुके तो साधु ने कहा-अब मैं अलग हो जाता हूं। कोई किसी का साथ नहीं कर सकता है और अच्छा है कि तुम साथ के आदी हो जाओ,

मैं इसके पहले विदा हो जाऊं। इतना कह कर उस घनी रात में, अंधेरी रात में, उसने उसके हाथ के दीये को भी फूंक कर बुझा दिया। वह युवक बोला-यह क्या पागलपन हुआ? अभी तो आश्रम के हम बहार भी नहीं निकल पाये,

साथ भी छोड़ दिया और दीया भी बुझा दिया। उस साधु ने कहा-दूसरों के जलाये हुए दीये का कोई मूल्य नहीं है। अपना ही दीया हो तो अंधेरे में काम देता है, किसी दूसरे के दीये काम नहीं देते। खुद के भीतर से प्रकाश निकले तो ही रास्ता प्रकाशित होता है और कैसी तरह रास्ता प्रकाशित नहीं होता।

तो मैं निरंतर सोचता हूं, लोग सोचते होंगे कि मैं आपके हाथ में कोई दीया दे दूंगा, जिससे आपका रास्ता प्रकाशित हो जायेगा तो आप गलती में हैं। आपके हाथ में दीया होगा तो मैं उसे बड़ी निर्ममता से फूंक कर बुझा सकता हूं। मेरी मंशा और मेरा इरादा यही है कि आपके हाथ में, अगर कोई दूसरे का दिया हुआ प्रकाश हो तो मैं उसे फूंक दूं, उसे बुझा दूं। आप अंधेरे में अकेले छूट जाएं, कोई आपका संगी-साथी हो तो उसे भी छीन लूं। और तभी, जब आपके पास दूसरों का जलाया हुआ प्रकाश न रह जाए और दूसरों का साथ न रह जाए, तब आप जिस रास्ते पर चलते हैं, उस रास्ते पर परमात्मा आपके साथ हो जात है और आपकी आत्मा के दीये के जलने की संभावना हो जाती है। सारी जमीन पर ऐसा हुआ है, सत्य की तो बहुत खोज है, परमात्मा की बहुत चर्चा है। लेकिन-लेकिन ये सारे कमजोर लोग कर रहे हैं, ये साथ छोड़ने को राजी नहीं है, न दीया बुझाने को राजी हैं। अंधेरे में जो अकेले चलने का साहस करता है, बिना प्रकाश के, उसके भीतर साहस का प्रकाश पैदा होना शुरू हो जाता है और जो सहारा खोजता है, वह निरंतर कमजोर होता चला जाता है। भगवान को आप सहारा ने समझें। और जो लोग भगवान

को सहारा समझते होंगे वे गलती में हैं, उन्हें भगवान का सहारा उपलब्ध नहीं हो सकेगा।

कमजोरों के लिए जगत में कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। और जो शक्तिहीन हैं और जिनमें साहस की कमी है, धर्म उनका रास्ता नहीं है। दीखता उलटा है। दिखाता यह है कि जितने कमजोर हैं, जितने साहस हीन हैं, वे सभी धार्मिक होते हुए दिखायी पड़ते हैं। कमजोरों को, साहस हीनों को, जिनकी मृत्यु करीब आ रही हो, उनको घबराहट में, भय में धर्म ही मार्ग मालूम होता है। इसलिए धर्म के आस-पास कमजोर और साहस हीन लोग इकट्ठे हो जाते हैं, जबकि बात उलटी है। धर्म तो उनके लिए है, जिनके भीतर साहस हो, जिनके भीतर शक्ति हो, जिनके भीतर अदभ्य ि

हम्मत हो और जो खुद अंधेरे में अकेले, बिना प्रकाश के चलने का दुस्साहस करते
हों।

यह मैं प्राथमिक रूप से आपसे कहूं-दुनिया में यही वजह है कि जब से कमजोरों ने
धर्म को चुना है तब से धर्म कमजोर हो गया है। और अब तो सारी दुनिया में कम
जोर लाग ही धार्मिक हैं। जिनमें थोड़ी-सी भी हिम्मत है, वे धार्मिक नहीं हैं। जिनमें
थोड़ा-सा साहस है, वे नास्तिक हैं और जिनमें साहस की कमी है, वे सब आस्तिक
हैं। भगवान की तरफ सारे कमजोर लोग इकट्ठे हो गये हैं, इसलिए दुनिया में से ध
र्म नष्ट होता चला जाता है। इन कमजोरों को भगवान तो बचा ही नहीं सकता, ये
कमजोर
भगवान को कैसे बचायेंगे? कमजोरों की कोई सुरक्षा नहीं है और कमजोर लोग कि
सी की रक्षा कैसे करेंगे?

सारी दुनिया में मनुष्य के इतिहास के इन दिनों में, इन क्षणों में, जो धर्म का अचा
नक ह्रास हुआ और पतन हुआ है, उसका बुनियादी कारण यही है। तो मैं आपसे क
हूं, अगर आप में साहस हो तो ही धर्म के रास्ते पर चलने का मार्ग खुलता है। न
हो तो दुनिया में बहुत रास्ते हैं। धर्म आप में भी नहीं हो सकता। जो आदमी भय
के कारण भयभीत होकर धर्म की तरफ आता हो, वह गलत आ रहा है।

लेकिन सारे धर्म-पुरोहित तो आपको भय देते हैं-नरक के भय, स्वर्ग का प्रलोभन, प
ाप-पुण्य का भय और प्रलोभन और घबराहट पैदा करते हैं। वे घबराहट के द्वारा आ
प में धर्म का प्रेम पैदा करना चाहते हैं। और यह आपको पता है, भय से कभी प्रेम
पैदा नहीं होता? और जो प्रेम भय से पैदा होता है, वह एकदम झूठा होता है, उ
सका कोई मूल्य नहीं होता। आप भगवान से डरते हैं आप नास्तिक होंगे, आस्तिक
नहीं हो सकते।

कुछ लोग कहते हैं, जो भगवान से डरे वह आस्तिक हैं-गॉड-फियरिंग, जो ईश्वर से
डरता हो, वह आस्तिक है। यह बिलकुल झूठी बात है। ईश्वर से डरने वाला कभी
आस्तिक नहीं हो सकता, क्योंकि डरने से कभी प्रेम पैदा पहीं होता। और जिससे ह
म भय खाते हैं, उसको बहुत प्राणों के प्राण में घृणा करते हैं। यह तो संभव ही नह
ीं है। भय के साथ भीतर घृणा छिपी होती है। जो लोग भगवान
से भयभीत हैं, वे भगवान के शत्रु हैं और उनके मन में भगवान के प्रति घृणा होगी
।

तो मैं आपसे कहूं, ईश्वर से भय मत खाना। ईश्वर से भय खाने का कोई भी कार
ण नहीं है। इस सारे जगत में अकेला ईश्वर ही है, जिससे भय खाने का कोई कार
ण नहीं। और सारी चीजें भय खाने की हो सकती हैं। लेकिन हुआ उलटा है। और
मैं बड़े-बड़े धार्मिकों को यह कहते सुनता हूं कि ईश्वर का भय खाओ। और ईश्वर
का भय खाने से पुण्य पैदा होगा। और ईश्वर का भय खाने से सच्चरित्रता पैदा होग
ी। ये निहायत झूठी बातें हैं। भय से कहीं सदाचार पैदा हुआ है? जैसे हमने रास्ते प

र पुलिस वाले खड़े कर रखे हैं, वैसे ही हमने परलोक में भगवान को खड़ा कर रख
ा है। वह एक बड़े पुलिया वाले कि हैसियत से है, एक बड़े
कांस्टेबल की हैसियत से है। भगवान को जिन्होंने कांस्टेबल बना दिया है, उन लोगों
ने धर्म को बहुत नुकसान पहुंचाया है। भगवान के प्रति भय से कोई विकसित नहीं
होता। भगवान के प्रति तो अभय चाहिए और अभय का अर्थ क्या होगा?
अभय का अर्थ होगा, जो लोग श्रद्धा करते हैं, वे लोग भय के कारण श्रद्धा करते हैं
। इसलिए श्रद्धा को मैं धर्म की आधारभूत शर्त नहीं मानता। आपने सुना होगा कि
जिसका धार्मिक होना है, उसे श्रद्धालु होना चाहिए। गांधीजी से एक बहुत बड़े व्यकि
त ने जाकर पूछा कि मैं परमात्मा को जानना चाहता हूं तो क्या करूं? तो गांधीजी
ने कहा, विश्वास करो। अगर वह मुझसे पूछता तो मैं उससे यह नहीं कहता कि ि
वश्वास करो। गांधीजी कि बात ठीक नहीं है और उस आदमी ने गांधी से कहा, वि
श्वास करूं? जिस बात को जानता नहीं, विश्वास कैसे करूं? जिस बात से मैं परिि
चत नहीं, उसे मानूं कैसे? गांधी ने कहा, बिना माने तो परमात्मा को जाना नहीं ज
ा सकता।

और मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि जो मान लेते हैं, वे कभी नहीं जान
सकेंगे। मैं आपसे यह कहता हूं कि जो परमात्मा को मान लेते हैं, वे कभी नहीं जा
न सकेंगे। यह आपका दुर्भाग्य होगा कि आप परमात्मा को मानते हों, क्योंकि मानने
को अर्थ यह हुआ कि आपने जिज्ञासा और खोज के द्वार बंद कर दिये। मानने का
अर्थ यह हुआ कि अब आपकी कोई तलाश नहीं है, अब आपकी कोई खोज नहीं हैं,
अब आपकी कोई इन्क्वायरी नहीं है। अब आप कुछ खोज नहीं रहे हैं, आप तो मा
न कर बैठ गये, आप तो कर गये।
श्रद्धा मृत्यु है। और संदेह जीवन है। संदेह खोज है। तो मैं आप से श्रद्धालु होने को
नहीं, मैं आप से संदेहवान होने को कहता हूं। लेकिन संदेह करने का यह मतलब
मत समझ लेना कि मैं आपको ईश्वर को न मानने को कह रहा हूं, क्योंकि न मान
ना भी मानने का एक रूप है। आस्तिक भी श्रद्धालु होता है, नास्तिक भी श्रद्धालु हो
ता है। आस्तिक की श्रद्धा है कि ईश्वर है, नास्तिक की श्रद्धा है कि ईश्वर नहीं है।
वे दोनों अज्ञानी हैं। इन दोनों की श्रद्धाएं हैं, इन दोनों की खोज नहीं है। संदेह ती
सरी अवस्था है, आस्तिक और नास्तिक दोनों ही नहीं। संदेह तो स्वतंत्र चित्त की अ
वस्था है। वैसा व्यक्ति निर्भय होकर पूछता है, क्या है? और न वह परंपरा को मान
ता है, न वह रूढ़ि को मानता है, न वह शास्त्र को मानता है। वह किसी दूसरे के
दीये को अंगीकार नहीं करता। वह यही कहता है कि खोजूंगा अपने दीया। वही सा
थी हो सकेगा। दूसरों के दीये कितनी देर तक, कितनी सीमा तक साथ दे सकते हैं
?
और जीवन के इस रास्ते पर सच तो यह है कि अपने सिवाय, स्वयं के सिवाय कोई
और साथी नहीं है। कितनी ही बड़ी भीड़ खड़ी हो, कोई साथी नहीं है। महावीर क
ो,

बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को कितना ही ज्ञान मिला हो, एक रत्ती भर भी, अपना ज्ञान वह आपको देने में समर्थ नहीं हैं। इस जगत में ज्ञान दिया-लिया नहीं जा सकता और सब चीजें ली-दी जा सकती हैं। और स्मरण रखें जो नहीं लिया जा सकता, नहीं दिया जा सकता, वही मूल्यवान है। जो लिया जा सकता है, दिया जा सकता है उसका कोई मूल्य नहीं है।

मैं तो ऐसा ही मानता हूं कि वही चीज संसार का हिस्सा है,

जिसको हम ले-दे सकते हैं और वह चीज सत्य का हिस्सा हो जाती है जिसका लेना-देना संभव नहीं है। कोई इस आशा में न रहे कि वह अपनी श्रद्धाओं से सत्य की या परमात्मा की खोज कर लेगा। साधारणतया यही हमें सिखाया जाता है और इसके दुष्परिणाम हुए हैं। इसके परिणाम हुए हैं कि दुनिया में इतने लोग धार्मिक हैं, लेकिन धर्म कहां है? इतने मंदिर हैं, इतनी मस्जिदें हैं, लेकिन मंदिर-मस्जिद हैं कहां?

कल रात मैं बात करता था-एक संन्यासी के पास मेरा एक मित्र मिलने गया था। उस संन्यासी ने कहा-मंदिर जाते हो? मेरे उस मित्र ने कहा-मंदिर है कहां? हम तो जरूर जाएं, कोई मंदिर बता दे! वह संन्यासी तो हैरान हुआ। वह संन्यासी तो मंदिर में ठहरा हुआ था। उस संन्यासी ने कहा-यह जो देख रहे हो, यह क्या है? उस युवक ने कहा-यह तो मकान है, यहां मंदिर कहां है? यह तो मकान है। और उस युवक ने कहा- सारी जमीन पर, जिनको लोग मंदिर और मस्जिद कहते हैं, वे मकान हैं, मंदिर कहां हैं? और जिनको आप मूर्तियां कह रहे हैं, जिनको आप भगवान की मूर्तियां कह रहे हैं-कैसी आत्मप्रवंचना है, कैसा धोखा है! मिट्टी और पत्थर को, अपनी कल्पना से हम भगवान बना लेते हैं, जैसे कि हम भगवान के स्रष्टा हैं।

सुना था मैंने कि भगवान मनुष्यों का स्रष्टा है, देखा यही कि आदमी, मनुष्य ही भगवान के स्रष्टा हैं और हर एक आदमी अपनी-अपनी शक्ल में भगवान को बनाये हुए बैठा है। भगवान ने दुनिया को सभी बनाया या नहीं, यह तो संदेह की बात है, लेकिन आदमी ने भगवान की खूब शक्लें बनायी हैं, यह स्पष्ट ही है। और जो भगवान आदमी का बनाया हुआ हो, उसे भगवान कहना, आदमी के अज्ञान और अहंकार की घोषणा के सिवाय और कुछ भी नहीं है। जो आदमी का बनाया हुआ हो, उसे भगवान कहना, आदमी के अज्ञान और अहंकार की घोषणा के सिवाय और क्या है? कैसा धोखा आदमी अपने को दे सकता है!

यह हमारा निम्नतम अहंकार है कि हम सोचते हैं कि जो हम बनाते हैं, वह भगवान हो सकता है। जो नहीं बनाया जा सकता और जिसे कोई कभी नहीं बना सकेगा और जो सब बनाने के पहले है और सब बनने के बाद भी शेष रह जाता है, उसे हम भगवान कहते हैं। उसका मंदिर कहां है, उसकी मस्जिद कहां है, उसके मानने वाले लोग कहां हैं? असल में उसका कोई मानना नहीं होता, उसका तो जानना होता है। मानना नहीं होता उसका कोई, उसका जानना होता है। अंधा प्रकाश को मान

लेगा तो उसके मानने का क्या मूल्य होगा? और वह प्रकाश की जो कल्पना करेगा, वह भी कैसी होगी? उसका प्रकाश से क्या संबंध होगा?

रामकृष्ण के पास एक दफा एक व्यक्ति आया। रामकृष्ण से उसने कहा कि मुझे सत्य के संबंध में कुछ बतायें। रामकृष्ण से उसने कहा कि मुझे परमात्मा के संबंध में कुछ कहें। रामकृष्ण ने कहा-मुझे तुम्हारे पास आंखें तो दिखायी नहीं देतीं, तुम समझोगे कैसे? वह बोला-आंखें मेरे पास हैं। रामकृष्ण ने कहा-अगर उन्हीं आंखों से परमात्म और सत्य जाना होता तो परमात्मा और सत्य को जानने की जरूरत ही न रह जाती, सभी लोग उसे जानते। और भी आंख है। और भी आंखें हैं। वह बोला-फिर भी कुछ तो समझायें। रामकृष्ण ने एक कहानी कही। वह कहानी बड़ी मीठी है, बड़ी अद्‌भुत है।

बड़ी प्राचीन कथा है, हजारों-हजारों ऋषियों ने उस कहानी को कहा है और आने वाले जमाने में भी हजारों-हजारों ऋषि उस कहानी को कहेंगे। उसमें बड़ी पवित्रता समाविष्ट हो गयी है। बड़ी छोटी-सी कहानी, बड़ी सरल-सी ग्रामीण कहानी है। रामकृष्ण ने कहा-एक गांव में अंधा था और उस अंधे को दूध से बहुत प्रेम था। उसके मित्र जब भी आते, उसके लिए दूध ले आते। उसने दफा अपने मित्रों से पूछा-इस दूध को मैं इतना प्रेम करता हूं, इतना प्रेम करता हूं कि मैं जानना चाहता हूं कि दूध कैसा है? क्या है? मित्रों नग कहा-मुश्किल है, कैसे बतायें? फिर भी उस अंधे ने कहा-कुछ तो समझायें, किसी तरह समझायें?

उसके एक मित्र ने कहा-दूध बगुले के पंख जैसा सफेद होता है। अंधा बोला-मुझसे मजाक न करे। बगुले को मैं जानता नहीं, उसके पंख की सफेदी को नहीं जानता। मैं कैसे समझूंगा कि दूध है! उस मित्र ने कहा-बगुला जो होता है, उसकी गर्दन घास काटने के हंसिए की तरह टेढ़ी होती है। अंधा बोला-आप पहेलियां बुझा रहे हैं। मैंने कभी देखा नहीं हंसिया। मुझे पता नहीं, वह कैसा टेढ़ा होता है? तीसरे मित्र ने कहा-इतनी दूर क्यों जाते हो? उसने अपना हाथ मोड़ कर उस अंधे से कहा-इस हाथ पर हाथ फेरो, इससे पता चल जायेगा कि हंसिया कैसा होता है?

उसने उसके तिरछे हाथ पर हाथ फेरा-घूमा हुआ, मुड़ा हुआ हाथ, औंधा हाथ। वह अंधा नाचने लगा। वह बोला-मैं समझ गया, दूध मुड़े हुए हाथ की तरह होता है।

और रामकृष्ण ने कहा-सत्य के संबंध में जो नहीं जानते हैं, उनको बतायी हुई सारी बातें ऐसी ही हो जाती हैं। इसलिए आपसे सत्य के संबंध में न कुछ कहा गया है और न कभी कुछ कहा जा सकेगा। आपसे यह नहीं कहा जा सकता है कि सत्य क्या है? आपसे इतना कहा जा सकता है कि सत्य को कैसे जाना जा सकता है। सत्य को नहीं बताया जा सकता, लेकिन सत्य की विधी का विचार किया जा सकता है। उस विधी में श्रद्धा का कोई हिस्सा नहीं है, खोज और अन्वेषण, जिज्ञासा और अभीप्सा-उसमें किसी चीज को मान लेने की कोई जरूरत नहीं है।

जब से दुनिया के धार्मिक ने यह शुरुआत की कि भगवान को मान लो, स्वीकार कर लो, अंगीकार कर लो, तब से जो भी विवेकशील हैं, वे सब भगवान के विरोध

में खड़े हो गये हैं, क्योंकि स्वीकार करना, अज्ञान में किसी चीज को मान लेना, जि सका थोड़ा भी विचार जाग्रत हो और विवेक प्रबुद्ध हो, उसके लिए कभी भी संभव नहीं होगा। अपने हाथों से धार्मिकों ने धर्म को विवेक-विरोधी बना कर खड़ा कर ि दया है। तो मैं आज की सुबह आपसे यह कहना चाहूंगा कि धर्म का विवेक से कोई विरोध नहीं है। धर्म भी परिपूर्ण रूप से विवेक को प्रतिष्ठा देता है और विवेक धर्म का खंडन नहीं है। विवेक के माध्यम से ही धर्म की परिपूर्ण उपलब्धि होती है। लेि कन अपने भीतर विवेक को जगाना होता है, श्रद्धा को नहीं।

विवेक और श्रद्धा मनुष्य के भीतर दो दिशाएं हैं। श्रद्धा का अर्थ है कि मैं मान लूं, जो कहा जाए। दुनिया के जितने प्रचारवाद हैं, सब यही चाहते हैं कि वे जो कहें, आप मान लें। दुनिया के जितने प्रोपेगैण्डिस्ट हैं, चाहे वे राजनीतिक हों, चाहे धार्मि क हों, वे चाहते हैं, जो भी वे कहें, आप मान लें। उनकी कही हुई बात में आप क ो कोई इंकार न हो। उन सबकी चेष्टाएं यह हैं कि आपका विवेक बिलकुल सो जाए और आपके भीतर एक अंधी स्वीकृति पैदा हो जाए।

इसका परिणाम यह हुआ है कि जो बहुत कमजोर हैं और जिनके भीतर विवेक की कोई संभावना नहीं है या जिनका विवेक बहुत क्षत था, क्षीण हो गया था या जो स ाहस नहीं कर सकते थे किसी कारण से अपने विवेक को जगाने का, वे सारे लोग धर्म के पक्ष में खड़े रह गये। और जिनके भीतर थोड़ा भी साहस था, वे सब धर्म के विरोध में चले गये। उन विरोधी लोगों ने विज्ञान को खड़ा किया और इन कमजोर लोगों ने धर्म को संभाले रखा।

आज दोनों सामने खड़े हैं और धर्म रोज क्षीण होता जाता है, विज्ञान राज विकसित होता जाता है। इसे कोई देखता नहीं कि यह क्या हो रहा है। हम समझ रहे हैं ि क विज्ञान नुकसान नहीं पहुंचा रहा है। धर्म के दरवाजे विवेकशील के लिए जब तक बंद रहेंगे, तब तक विवेकशील विज्ञान के पक्ष में खड़ा रहेगा। धर्म के द्वार विवेक शील के लिए खुल जाने चाहिए और विवेकहीन के लिए बंद हो जाने चाहिए। श्रद्धा धर्म के लिए आधार नहीं रह जानी चाहिए। ज्ञान, विवेक, शोध को धर्म का अंग हो जाना चाहिए। अगर यह हो सका तो धर्म से बड़ा विज्ञान इस जगत में दूसरा न हीं है। और जिन लोगों ने धर्म को खोजा और जाना है, उनसे बड़े वैज्ञानिक नहीं हु ए। यह उनकी अप्रतिम खोज है। मनुष्य के जीवन में उस खोज से बहुमूल्य कुछ भी नहीं है। उन सत्यों की थोड़ी-सी भी झलक मिल जाए तो जीवन अपूर्व आनंद और अमृत से भर जाता है।

तो मैं आपसे कहूंगा, विवेक-जागरण श्रद्धा नहीं है। स्वीकार कर लेना नहीं, शोध क र लेना। किसी दूसरे को अंगीकार कर लेना नहीं स्वयं अपनी साधना और आपने पैर ों पर खड़ा होना और जानना, चाहे अनेक जन्म लग जायें। दूसरे के हाथ से लिया सत्य, अगर एक क्षण में मिलता हो तो भी किसी कीमत का नहीं है। और अगर अ नेक जन्मों के श्रम और साधना से, अपना सत्य मिलता हो तो उसका मूल्य है। औ

र जिनके भीतर थोड़ी भी मनुष्य की गरिमा है, जिनको थोड़ा भी गौरव है कि हम मनुष्य हैं, वे किसी के दिये हुए झूठे सत्यों को स्वीकार नहीं करेंगे।
लेकिन हम सब झूठे सत्यों को स्वीकार किये बैठे हैं। और हमने अच्छे-अच्छे शब्द ई जाद कर लिये हैं, जिनके माध्यम से हम अपनी श्रद्धा को जाहिर करते हैं। यह बहु त बड़ी प्रवंचना है, यह बहुत बड़ा डिसेप्शन है। यह समाप्त होना जरूरी है। मैं आप से कहूंगा, आपके भीतर बहुत बार श्रद्धा होती होगी कि मान लें तो कमजोर मन है। कौन खुद खोजे। जितने आलसी हैं, जितने तामसी हैं, वे सब श्रद्धालु हो जायेंगे। लेकिन कौन खुद को खोजे, खुद कि कौन चेष्टा करे? कृष्ण कहते हैं तो ठीक ही होगा और महावीर कहते हैं तो ठीक ही होगा, क्राइस्ट कहते हैं तो ठीक ही होगा। उन्होंने सारी खोज कर ली, हमें तो सिर्फ स्वीकार कर लेना है।
यह वैसा ही पागलपन है जैसा कोई आदमी दूसरों को प्रेम करते देख कर यह समझे कि मुझे प्रेम करने से क्या प्रयोजन! दूसरे लोग प्रेम कर रहे हैं, मुझे तो सिर्फ सम झ लेना है, ठीक है! लेकिन दूसरे को प्रेम करते देख कर क्या आप समझ पायेंगे कि प्रेम क्या है? इस जगत में सारे लोग प्रेम करते हों, मैं देखता रहूं तो भी मैं नहीं समझ पाऊंगा, जब तक कि वह आंदोलन मेरे हृदय में न हो। जब तक कि वे किर णें मुझे आंदोलित न कर जायें, जब तक कि वे हवाएं, मुझे न छू जायें, तब तक मैं प्रेम को नहीं जान सकूंगा। सारी दुनिया प्रेम करती हो तो वह किसी मतलब का न हीं।
सारी दुनिया बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट से भरी पड़ी हो और मुझे सत्य का स्वयं अनु भव न होता हो तो मुझे कुछ पता न चलेगा। कोई रास्ता नहीं है। सारी दुनिया में आंख वाले हों और मैं अंधा हूं तो क्या होगा? उन सबकी मिली हुई आंखें भी, मेरी दो आंखों के बराबर मूल्य नहीं रखती हैं। दस दुनिया में दो अरब लोग हैं, तीन अ रब लोग हैं, छह अरब आंखें हैं। एक अंधे आदमी की दो आंखों का जो मूल्य है, व ह छह अरब आंखों का नहीं है। मैं आपसे यह कहना चाहूंगा, अपने भीतर श्रद्धा की जगह, विवेक को जगाये रख ने का उपाय करना चाहिए और विवेक को जगाने के क्या नियम हो सकते हैं, उस संबंध में थोड़ी बात आपसे कहूं।
पहली बात-जन्म के साथ प्रत्येक मनुष्य को, दुर्भाग्य से किसी न किसी धर्म में पैदा होने का मौका मिलता है। दुनिया अच्छी होगी तो हम दुर्भाग्य कम कर सकेंगे। लेकि न अभी तो यह है। और तब परिणाम यह होता है कि जब उसमें विवेक को कोई जागरण नहीं होता है, बाल-मन होता है, चुपचाप चीजें स्वीकार कर लेने कि मन:ि स्थति होती है, तब सारे धर्मों के सत्य, उसके मन में प्रविष्ट करा दिये जाते हैं। त ब उसके मन में सारी बातें डाल दी जाती हैं। वह उन पर श्रद्धा करने लगता है।
मैं एक गांव में गया। वहां एक अनाथालय भी देखने गया। वहां कोई पचास बच्चे थे। उस अनाथालय के संयोजक ने मुझसे कहा कि इनको हम धार्मिक शिक्षा भी देते हैं। मुझे यह समझ कर कि मैं साधु जैसा हूं उसने सोचा कि यह खुश होंगे कि धर्म की शिक्षा देता हूं। मैंने कहा कि उससे बुरा काम दूसरा नहीं है दुनिया में, क्योंकि

धर्म की शिक्षा आप क्या देंगे? धर्म की कोई शिक्षा होती है? धर्म की तो साधना ह ोती है, शिक्षा नहीं होती।

अभी मैं सुनता हूं कि एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक ने अमरीका में एक संस्था खोली, जहां वह प्रेम की शिक्षा देते हैं। यह तो बड़ी बेवकूफी की बात है, यह तो बड़ी मू र्खतापूर्ण बात है। और इस संस्था से जो लोग प्रेम कि शिक्षा लेकर निकलेंगे, इस ज गत में वे प्रेम कभी नहीं कर पायेंगे। इसे स्मरण रखें, कैसे प्रेम करेंगे? वे जब भी प्रे म करेंगे, तब यह शिक्षा बीच में आ जायेगी और वह अभिनय करने लगेंगे, प्रेम नह ीं कर सकेंगे। जब उनके हृदय में कुछ कहने को होगा, तब वह उन किताबों से पढ़ कर कहेंगे, जिनमें लिखा हुआ है कि प्रेम की बातें कैसी कहनी चाहिए और तब वै सा आदमी, जो प्रेम में शिक्षित हुआ है, वंचित हो जाएगा और यह जो आदमी ध र्म में शिक्षित होगा, वह धर्म से वंचित हो जाएगा। धर्म तो प्रेम से बड़ी गूढ़ और र हस्य की चीज है। प्रेम को तो कोई सीख भी ले, धर्म को कैसे सीख सकेगा? धर्म ि क कोई लर्निंग नहीं होती। वह कोई गणित थोड़े ही है, कोई फिजिक्स थोड़े ही है, कोई भूगोल थोड़े ही है कि आपने समझा दिया, लागों ने याद कर लिया और परी क्षा दे दी। धर्म की कोई परीक्षा नहीं हो सकती है?? अगर धर्म की परीक्षा नहीं हो सकती है तो शिक्षा भी नहीं हो सकती है। जिस चीज की परीक्षा हो सके, उसकी ही परीक्षा हो सकती है।

तो मैंने उनसे कहा कि यह तो आप बड़ा बुरा काम कर रहे हैं। इन बच्चों के मन को बड़ा नुकसान पहुंचा रहे हैं, क्या शिक्षा देते होंगे? तो वे बोले-आप क्या कहते हैं , जब धर्म की शिक्षा नहीं होगी तो लोग बिलकुल बिगड़ जायेंगे। मैंने कहा-दुनिया में धर्म की इतनी शिक्षा है, लोग भले दिखाई पड़ रहे हैं। दुनिया में धर्म की इतनी शिक्षा है, जितनी बाइबिल दीखती है उतनी कोई किताब नहीं दीखती, जितनी गीत ा पढ़ी जाती है कोई किताब नहीं पढ़ी जाती, जितने रामायण के पाठ होते हैं, उत ने कौन-सी किताब के होते होंगे? कितने संन्यासी हैं, कितने साधु हैं। एक-एक धर्म के कितने प्रचारक हैं। कैथोलिक ईसाइयों के प्रचारकों की संख्या ग्यारह लाख है। और इसी तरह सारी दुनिया के धर्म-प्रचारकों की संख्या है। यह इतना प्रचार, इतनी शिक्षा, इसके बाद आदमी कोई बना हुआ तो मालूम नहीं होता है। इससे बिगड़ी शक्ल और क्या होगी, जो आदमी की आज है।

तो मैं आपसे यह कहना चाहूंगा कि धर्म।शिक्षा से आदमी नहीं ठीक होगा। मैंने उन से कहा-यह तो गलत बात है। फिर भी मैं समझूं आप क्या शिक्षा देते हैं? उन्होंने कहा-आप कोई भी प्रश्न पूछिए, यह बच्चे हर प्रश्न का उत्तर देंगे। मैंने कहा-यही दु र्भाग्य है। सारी दुनिया में किसी से पूछिए, ईश्वर है? कह देगा, है। यही खतरा है। जिनको कोई पता नहीं है, वे कहते हैं है और इसका परिणाम यह होगा कि वह ध ीरे-धीरे अपने इस उत्तर पर खुद विश्वास कर लेंगे कि ईश्वर है और तब उनकी ख ोज समाप्त हो जाएगी।

मैंने उन बच्चों से पूछा-आत्मा है? वे सारे बच्चे बोले-है। उनके संयोजक ने पूछा-आत्मा कहां है? उन सब बच्चों ने हृदय पर हाथ रखा और कहा-यहां। मैंने एक छोटे बच्चे से पूछा-हृदय कहां है? उसने कहा-यह हमें सिखाया नहीं गया।यह हमें बताया नहीं गया। मैंने उन संयोजक से कहा-ये बच्चे जब बड़े हो जायेंगे तो यही बातें दोहराते रहेंगे। और जब भी प्रश्न उठेगा, आत्मा है तो यांत्रिक मैकेनिकल रूप से, उनके हाथ भीतर चले जाएंगे और वे कहेंगे, यहां। यह बिलकुल झूठा हाथ होगा, जो सीखने की वजह से चला जाएगा।

आपके जितने उत्तर हैं परमात्मा के संबंध में, धर्म में वह सब सीखे हुए हैं।

विवेक-जागरण के लिए पहली शर्त है, जो सीखा हुआ हो सत्य के संबंध में, उसे कचरे की भांति बाहर फेंक देना है।: जो आपके मां-बाप ने, आपकी शिक्षा ने, आपकी परंपरा ने, आपके समाज ने जो भी सिखाया हो, उसे कचरे की तरह बाहर फेंक देना। धर्म इतनी ओछी बात नहीं है कि कोई सिखा सके। इसमें मैं आपके मां-बाप का, आपकी परंपरा का अपमान नहीं रहा हूं, इसमें मैं आपके मां-बाप का, आपकी परंपरा का अपमान नहीं कर रहा हूं, इसमें मैं धर्म की प्रतिष्ठा कर रहा हूं। स्मरण रखें, मैं यह नहीं कह रहा कि परंपरा बुरी बात है।

पहली बात है जिज्ञासा, स्वतंत्र जिज्ञासा और जो सिखाया गया है, उसे कचरे की भांति फेंक देने की जरूरत। इसके लिए साहस चाहिए। अपने वस्त्र छोड़ कर नग्न हो जाने के लिए उतने साहस की जरूरत नहीं है, जितने साहस की जरूरत मन के उन वस्त्रों को छोड़ने के लिए है जो कि परंपरा आपको पहना देती है और उन ढांचों को तोड़ने के लिए है, जो समाज आपको दे देता है। हम सबके मन बंधे हुए हैं एक ढांचे में। और उस ढांचे में जो बंधा है, वह सत्य की उड़ान नहीं भर सकेगा। इसके पहले कि कोई सत्य की तरफ अग्रसर हो, उसे सारे ढांचे तोड़कर मिटा देने होंगे। मनुष्य ने जितने भी विचार परमात्मा के संबंध में सिखाया हैं, उन्हें छोड़ देना होगा।

एक रात को कुछ शराबी एक नदी नर गये हुए थे और उन्होंने सोचा कि पूर्णिमा की रात है, नाव में बैठकर कर यात्रा करें। वे नाव में बैठे। उन्होंने पतवार चलायी और उन्होंने समझा कि नाव चलनी शुरू हो गयी। वे रात भर नाव चलाते रहे। उन्होंने सोचा कि बड़ी यात्रा हो गयी। सुबह जब ठंडी हवाएं चलने लगी और उनका नशा थोड़ा उतरा, तब उनमें से एक ने कहा कि हम देखें तो कितनी दूर निकल आये, वापिस लौटें। वे घाट पर उतरे। उन्होंने देखा कि अरे! रातभर की मेहनत व्यर्थ गयी। वे नाव को खोलना भूल गये थे। वह नाव वहीं खूंटे से बंधी हुई थी। चलायी उन्होंने रातभर और समझा कि यात्रा हो रही है, लेकिन नाव को खूंटे से खोलना भूल गये थे।

वे लाग, जिन्होंने अपनी नाव को, सत्य और परमात्मा की तरफ लगाया हो, अगर उन्होंने परंपरा और समाज के खूंटे से अपने को नहीं छोड़ा तो एक दिन वे पायेंगे कि नाव वहीं खड़ी है। एक जब वे तट पर उतर कर देखेंगे तो पायेंगे कि जीवन व्य

र्थ गया। हमने पतवार तो बहुत चलायी, लेकिन नाव एक इंच भी आगे नहीं जा स की। नाव को गतिमान करने के लिए चलाना ही काफी नहीं, छोड़ना भी जरूरी है। इससे पहले कि आप सत्य की तरफ चलें, आप अपने को छोड़ें। जो छोड़ना भूल जा एगा, उसका चलना सार्थक नहीं होगा।

आपने कहीं अपने को छोड़ा है क्या? मैं तो हैरान हूं। सत्य की तरफ जो लोग उत्सु क होते हैं, वे उतने ही जोर से बंधने लगते हैं, छोड़ने के बजाए। अगर वह जैन हैं तो और ज्यादा जैन होने लगते हैं। अगर वे हिंदू हैं तो और ज्यादा हिंदू होने लगते हैं। अगर वे मुसलमान हैं तो और ज्यादा मुसलमान होने लगते हैं। वह उस खूंटे पर जंजीर को और गहरा करने लगते हैं। सत्य की तरफ जिसे जाना है, वह जैन कैसे हो सकता है? जिसे परमात्मा में उत्सुकता है, उसकी उत्सुकता मुसलमान और ई साई होने में कैसे हो सकती है? और अगर से उसकी उत्सुकताएं हैं तो खूंटे हैं और नाव को आगे नहीं जाने देंगे।

विवेक-जागरण के लिए पहली जरूरत है, इन खूंटों से अपने को छुड़ा लें, जिनसे स माज ने आपको बांध दिया है। समाज की जरूरत है बांधने के लिए। समाज को मुश्कि ल पड़ेगी, अगर आप बंधे हुए न हों। समाज का सारा ढांचा दिक्कत में पड़ जाएग ा, अगर वह आपको न बांधे।

इसलिए समाज आपको बांधने की चेष्टा करता है। समाज की व्यवस्था, समाज की सुव्यवस्था इस पर निर्भर है कि आप बंधे हुए हों। हर आदमी खूंटें से बंधा हुआ हो तो समाज व्यवस्थित होता है। समाज अपनी व्यवस्था के लिए, आपको बलि चढ़ा दे ता है। समाज व्यक्तियों का बलिदान कर लेता है, व्यवस्था के लिए। इसलिए समाज जितना व्यवस्थित होगा, व्यक्तियों का बलिदान उतना ही जरूरी हो जाएगा।

स्टैलिन या हिटलर जैसे लोगों ने व्यक्तियों को बिलकुल समाप्त कर दिया, क्योंकि स माज की पूरी व्यवस्था उनको करनी थी। उन्होंने व्यक्तियों को खूंटों से बंधा नहीं, व् यक्तियों को खूंटे बना दिया। उनके छूटने की गुंजाइश नहीं रखी। समाज की जरूरत है कि व्यक्ति बिलकुल मर जाए। वह मशीन की तरह व्यवहार करे। समाज जो क हे, उस तरफ जाए, समाज जो व्यवस्था दे, उसको माने। समाज को सत्य से कोई मतलब नहीं है, समाज को तो सुव्यवस्था से मतलब है। इसलिए समाज की जरूरतें आपको बांधेगी।

लेकिन एक सीमा पर आपकी अपनी जरूरत है और सबको आपको छोड़ना पड़ेगा। छोड़ने का मतलब यह नहीं है कि आप उच्छृंखल हो जायेंगे। छोड़ने का यह मतलब नहीं है कि आप स्वच्छंद हो जायेंगे। छोड़ने का यह मतलब नहीं कि आप समाज-ि वरोधी हो जायेंगे। छोड़ने का मतलब केवल इतना है कि आपके चित्त की भूमिका, जंजीरों से बंधी नहीं रह जाएगी। आप किन्हीं धारणाओं में अपने को कैद नहीं करेंगे , किन्हीं कन्सेप्टस में अपने को बंधेंगे नहीं और किन्हीं संस्कारों को आप अज्ञान में स्‍ वीकार नहीं करेंगे। आप खोज में संलग्न होंगे, आप आंतरिक जिज्ञासा के लोक में प्र

वेश करने लगेंगे और धीरे-धीरे वहां आपकी जो गति होगी और जो अनुभव आपको होंगे, वे ही अनुभव आपके पथ के प्रदीप बनेंगे, आपके लिए प्रकाश बनेंगे।
पहली जरूरत है, समाज ने जो ढांचे और संस्कार दिये हैं, उनको कोई व्यक्ति क्षीण करे, उनको छोड़े मन से। नहीं, इतना ही काफी नहीं है। समाज के ढांचे क्षीण हो जाएं तो मन उड़ने को मुक्त हो जाता है। लेकिन इसका मतलब सह नहीं है कि उ. डान शुरू हो गयी। उड़ने की संभावना पैदा हो जाती है। समाज के ढांचे, परंपरा, श ास्त्र, संप्रदाय इनके द्वारा प्रचारित संस्कार, इनको छोड़कर चेतना हलकी हो जाती है कि चेतना उड़ सकती है। फिर साथ में दूसरी चेष्टा, अंतर्दृष्टि के लिए करनी होती है। एक तो खूंटें से छोड़ देना, फिर अंतर्दृष्टि की पतवार चलानी होती है, तब ना व में गति आती है। अंतर्दृष्टि की पतवार का क्या अर्थ है? अंतर्दृष्टि की पतवार क ा अर्थ है कि चीजों को, जैसी वे दिखाई पड़ती हैं, उनको वैसी ही मत मान लेना। उनके भीतर बहुत-कुछ है। एक आदमी मर जाता है। हमने कहा, आदमी मर गया है। जो आदमी इस बात को यहीं समझ कर चुप हो गया, उसके पास अंतर्दृष्टि नहीं है।
गौतम बुद्ध एक महोत्सव में भाग लेने जाते थे। रास्ते में उनके रथ पर उनका सार थी था और वे थे। और उन्होंने एक बूढ़े आदमी को देखा। वह उन्होंने पहला बूढ़ा दे खा। जब गौतम बुद्ध का जन्म हुआ तो ज्योतिषियों ने उनके पिता से कहा कि यह व्यक्ति बड़ा होकर या तो चक्रवर्ती सम्राट होगा अथवा संन्यासी हो जाएगा। उनके ि पता ने पूछा-मैं इसे संन्यासी होने से कैसे रोक सकता हूं? उस ज्योतिषी ने बड़ी अद् भुत बात कही थी और वह समझने जैसी है। उस ज्योतिषी ने कहा-अगर उसे संन्या सी होने से रोकना है तो इसे ऐसे मौके मत देना कि उसमें अंतर्दृष्टि पैदा हो जाए। पिता बहुत हैरान हुए। यह क्या बात हुई-उनके पिता ने पूछा। ज्योतिषी ने कहा-इस को ऐसे मौके मत देना कि इसको अंतर्दृष्टि पैदा हो जाए। उनके पिता ने कहा-यह तो बड़ा मुश्किल हुआ, क्या करेंगे? उस ज्योतिषी ने कहा-इसकी बगिया में फूल कुम् हलाने से पहले अलग कर देना। यह कभी कुम्हलाया हुआ फूल न देख सके, क्योंकि यह कुम्हलाया हुआ फूल देखते ही पूछेगा, क्या फूल कुम्हला जाते हैं? और यह पू छेगा, क्या मनुष्य भी कुम्हला जाते हैं? और यह पूछेगा, क्या मैं भी कुम्हला जाऊंगा ? और उसमें अंतर्दृष्टि पैदा हो जाएगी। इसके आस-पास बूढ़े लोगों को मत आने दे ना, अन्यथा यह पूछेगा कि ये बूढ़े हो गए तो मैं भी बूढ़ा हो जाऊंगा। यह कभी मृत् यु को न देखे, पीले पत्ते गिरते हुए न देखे। अन्यथा यह पूछेगा, पीले पत्ते गिर जाते हैं तो क्या मनुष्य भी एक दिन पीला होकर गिर जाएगा? क्या मैं गिर जाऊंगा? और तब इसमें अंतर्दृष्टि पैदा हो जाएगी।
पिता ने बड़ी चेष्टा की और उन्होंने ऐसी व्यवस्था की कि बुद्ध ने युवा होते-होते त क कभी पीला पत्ता नहीं देखा, कुम्हलाया हुआ फूल नहीं देखा, बूढ़ा आदमी नहीं दे खा। किसी के मरने की कोई खबर नहीं सुनी। लेकिन यह कब तक हो सकता था? इस दुनिया में किसी आदमी को कैसे रोका जा सकता है कि मृत्यु न देखे, कैसे रो

का जा सकता है कि पीले पत्ते न देखे, कैसे रोका जा सकता है कि कुम्हलाये फूल न देखे। लेकिन मैं आप से कहता हूं, आपने भी मरता हुआ आदमी नहीं देखा होगा और अभी आपने पीला पत्ता नहीं देखा, अभी आपने कुम्हलाया हुआ फूल नहीं देखा। बुद्ध को उसके बाप ने रोका बहुत मुश्किल से, तब भी एक दिन उन्होंने देख ही लिया। आपको कोई नहीं रोके हुए है और आप नहीं देख पा रहे हैं। अंतर्दृष्टि नहीं है, नहीं तो आप संन्यासी हो जाते, क्योंकि उस ज्योतिषी ने कहा था कि अगर अंतर्दृष्टि पैदा होती है तो यह संन्यासी हो जायेगा। तो जितने लोग संन्यासी नहीं हैं, मानना चाहिए कि उनमें अंतर्दृष्टि नहीं होगी।

खैर, एक दिन बुद्ध को दिखाई पड़ गया। वह यात्रा पर गये, एक महोत्सव में भाग लेने गये और एक बूढ़ा आदमी दिखाई पड़ा। और उन्होंने तत्क्षण आपने सारथी से पूछा-इस मनुष्य को क्या हो गया? तो सारथी ने कहा-यह वृद्ध हो गया है। बुद्ध ने पूछा-क्या हर मनुष्य वृद्ध हो जाता है? उस सारथी ने कहा-हर मनुष्य वृद्ध हो जाता है। बुद्ध ने पूछा-क्या मैं भी? उस सारथी ने कहा-भगवान, कैसे कहूं? लेकिन कोई भी उपवाद नहीं है। आप भी हो जाएंगे। बुद्ध ने कहा-रथ लौटा लो वापस, रथ को वापस फेर लो। सारथी बोला-क्यों? बुद्ध ने कहा-मैं बूढ़ा हो गया।

यह अंतर्दृष्टि है। बुद्ध ने कहा-मैं बूढ़ा हो गया। अद्भुत बात कही, बहुत अद्भुत बात कही और वह लौट भी नहीं पाए कि उन्होंने एक मृतक को देखा। बुद्ध ने पूछा-यह क्या हुआ? तो सारथी ने कहा-यह बुढ़ापे के बाद का दूसरा चरण है। यह आदमी मी गया। बुद्ध ने पूछा-क्या हर आदमी मी जाता है? सारथी ने कहा-हां,हर आदमी । बुद्ध ने पूछा-क्या मैं भी? और सारथी ने कहा-आप भी, कोई भी उपवाद नहीं है। बुद्ध ने कहा-अब लौटाओ या न लौटाओ, सब बराबर है। सारथी ने कहा-क्यों? बुद्ध ने कहा-मैं मर गया।

यह अंतर्दृष्टि है। चीजों को उनके ओर-छोर तक देख लेना, चीजें जैसी दिखाई पड़ें, उनको वैसी ही स्वीकार न कर लेना। उनके अंतिम चरण तक, जिसको अंतर्दृष्टि पैदा होगी, वह अस भवन की जगह खंडहर भी देखेगा। जिसे अंतर्दृष्टि होगी, वह इतने जिंदा लोगों की जगह इतने मुर्दा लोग भी देखेगा-इन्हीं के बीच, इन्हीं के साथ। जिसे अंतर्दृष्टि होगी, वह जन्म के साथ ही मृत्यु हो भी देख लेगा, सुख के साथ दुःख को भी और मिलन के साथ विछोह को भी।

अंतर्दृष्टि और-पार देखने की विधि है। और जिस व्यक्ति हो सत्य जानना हो, उसे आर-पार देखना सीखना होगा, क्योंकि परमात्मा कहीं और नहीं है। जिसे और -पार देखना आ जाता है, उसे परमात्मा उपलब्ध हो जात है। वह आर-पार देखने के माध्यम से हुआ दर्शन है।

एक बहुत बड़ा राजा हुआ। वह एक रात सोया हुआ था। वह बगदाद में हुआ, एक मुसलमान राजा था। वह अपने महल में रात में सोया हुआ था। और उसने अपने ऊपर छत पर किसी के चलने की आवाज सुनी। उसने सोचा, यह कैसा पागलपन है, इतनी रात को महल की छत पर कौन चलता है। उसने चिल्ला कर पूछा-आधी

रात है, यह कौन ऊपर छत पर चल रहा है-कौन है जो ऊपर छत पर चल रहा है ? एक आदमी ने ऊपर से कहा-मेरा ऊंट खो गया है, उसे खोज रहा हूं। वह राजा हैरान हुआ, उसने कहा-पागल मालूम होते हो। ऊंट कहीं छतों पर खो सकते हैं? उस आदमी ने कहा कि अगर मकानों की छतों पर ऊंट नहीं खो सकते और अगर मकानों की छतों पर ऊंट नहीं खोजे जा सकते तो तुम वहां राजसिंहासन पर परमात मा को क्यों खोज रहे हो? कभी सोचा कि मकान पर तो ऊंट खो भी जाएं, मिल भी जाएं, लेकिन राजसिंहासन पर परमात्मा कभी नहीं मिलेगा। राजा बहुत हैरान हु आ। उसने बहुत कोशिश की कि कौन आदमी था जिसने ऊपर से यह बात कही, उ स फकीर को खोजवाया जाए। उसे बहुत ढुंढ़वाया, लेकिन उसका कहीं पता नहीं च ला। दिन बीते, राजा वह बात भूल गया।

पर एक दिन एक संन्यासी, एक फकीर दरबार में आया। वह इतना महिमायुक्त था, इतना प्रभावी था कि संतरी उसे रोक नहीं सके, वे पूछ नहीं सके कि आप कैसे ज ाते हैं? किसकी आज्ञा से? वह भीतर प्रविष्ट हुआ और दरबार में पहुंच गया? सारे दरबारी घबरा कर खड़े हो गये, खुद राजा भी खड़ा हो गया। और उसने पूछा-कौ न हैं आप और कैसे आये? क्या प्रयोजन है? उस फकीर ने कहा-इस सराय में मैं कुछ दिन ठहरना चाहता हूं। राजा ने कहा-सराय! अशिष्ट बात बोल रहे हो। थोड़ा शिष्टाचार का भी बोध नहीं है। यह मेरा महल है, यह मेरा निवास है।

वह फकीर जोर से हंसने लगा और बोला-इससे पहले भी मैं आया था, लेकिन तुम को नहीं पाया था। तब दूसरा आदमी इस सिंहासन पर था। उसके पहले भी आया था, तब उसको भी नहीं पाया था, तब तीसरा आदमी इस सिंहासन पर था। यहां मैं कई दफा आया, हर दफा आदमी बदल जाते हैं। इसलिए क्षमा करें, मुझे ऐसा श क हुआ कि यह सराय है, यहां लोग आते और जाते हैं। और इसलिए मैंने कहा कि इस सराय में मुझे ठहरने का कोई अवकाश मिल जाए तो बड़ी कृपा हो।

राजा ने उठ कर उसके पैर पकड़ लिये और कहा कि निश्चित हो गया। जिस आदम ी को मैं खोजता था, वह तुम्हीं हो सकते हो। क्या उस राज मेरी छत पर ऊंट तुम्ह ीं खोजते थे? क्योंकि तुम्हारे सिवाय और कौन खोजेगा? वह फकीर बोला-मैं ही था और आया था कि शायद तुम्हें अंतर्दृष्टि प्राप्त हो जाए और आज फिर आया हूं ि क शायद अंतर्दृष्टि पैदा हो जाए। उस राजा ने कहा-बात समझ में आ गयी। और उसने पीछे लौट कर नहीं देखा और महल के बाहर हो गया। उससे जब भी लोग पू छते कि ऐसा तुमने इतनी जल्दी क्यों किया तो वह कहता, अंतर्दृष्टि जब पैदा होती है तो जल्दी और देर को कोई सवाल नहीं रहता।

और-पार देखने कि जरूरत है, तब मकान सराय दिखाई पड़ेगा और आप चलते-फि रते मुर्दे मालूम होंगे। खुद अपने को मुर्दे मालूम होंगे, क्योंकि जो चीज मर जानी है, वह आज ही मरी हुई होनी चाहिए। जो चीज मर जानी है, वह हमेशा मर रही है धीरे-धीरे। मैं जिस दिन पैदा हुआ, उसी दिन से मर रहा हूं। एक दिन यह मरने की प्रक्रिया पूरी हो जाएगी और मैं समाप्त हो जाऊंगा। उसे लोग मृत्यु कहेंगे, लेकि

न जो देखता है, वह जान रहा है कि मैं प्रतिक्षण मर रहा हूं। नहीं तो मृत्यु घटित कैसे हो? मरने का क्रमिक विकास ही, 'ग्रेजुअल ग्रोथ' ही है रोज बढ़ती हो रही मृत्यु की। वह एक दिन मरण बन जाएगा। हम यहां जितने लोग बैठे हैं, मर रहे हैं। जो जीवन में आर-पार देखेगा, उसे अनेक बातें दिखाई पड़नी शुरू होंगी। जिज्ञासा मुक्त हो और अंतर्दृष्टि की तलाश रहे और हम किसी चीज को जैसी वह दिखाई पड़ती हो, उसका चेहरा जैसा मालूम पड़ता हो, वैसा स्वीकार न कर लें, उसके भीतर प्रवेश करें और देखें, तब यह सारा जगत संन्यास का उपदेश बन जाता है। यह सारा जगत परित्याग का उपदेश बन जाता है। यह सारा जगत धर्म का शिक्षालय हो जात है और जो आर-पार देखने में समर्थ हो जाता है, जिसकी शिक्षा, जिसकी जीवन-शिक्षा और अनुशासन आर-पार देखने में समर्थ हो जाता है, वह व्यक्ति घटनाओं के पीछे, उसको देखने लगता है जिससे कोई घटना नहीं घटती। वह व्यक्ति परिवर्तन के पीछे उसको अनुभव करने लगता है जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। वह व्यक्ति जड़ता के पीछे उसको देखने लगता है, जो चैतन्य है। उस व्यक्ति की जैसे-जैसे क्षमता गहरी होती जाती है, वह अनित्य के पीछे नित्य का और सामीप्य के पीछे दूरी का दर्शन करने लगता है। जब उसे सारे तथ्य के पीछे वह शाश्वत मिल जाता है, वह सनातन मिल जाता है, जिसके पार देखना असंभव है, उसी बिन्दु का नाम ईश्वर है।

जिसके पार देखा जा सकता है, उसका नाम संसार है और जिसके पार नहीं देखा जा सकता है, उसको नाम सत्य है। जहां तक हमारी दृष्टि प्रवेश कर सकती है, जहां तक दृष्टि की गति है, वहां तक संसार है। और जहां दृष्टि की अगति हो जाती है और दृष्टि आगे जा ही नहीं सकती, अंतिम क्षण आ जाता है, तब अंतिम बिन्दु आ जाता है, जिसके पार दृष्टि शून्य हो जाती है, जिसके पार देखने को कुछ रह नहीं जाता। उस जगह का नाम सत्य है, उस जगह का नाम परमात्मा है। उसे जो मंदिर में खोज रहा है, वह नासमझ है। मंदिर के तो पार देखा जा सकता है, वह तो संसार का हिस्सा है। जो उसे शास्त्र में खोज रहा है, वह नासमझ है।

शास्त्र के तो पार देखा जा सकता है, शास्त्र तो पदार्थ का हिस्सा है। परमात्मा को तो वहां खोजना होगा, जिसके पार नहीं देखा जो सकता।

कौन-सी चीज है ऐसी, जिसके पार आप नहीं देख सकते? अगर आप अपने भीतर प्रविष्ट होंगे तो आपके सिवाय ऐसी कोई चीज नहीं जिसके पार आप देख सकते हैं। हर चीज के पार देखा जो सकता है, सिवाय आपको छोड़ कर। जब आप भीतर प्रविष्ट होंगे तो आपको अपने ही भीतर एक बिन्दु उपलब्ध होगा, जिसके आर-पार कहीं नहीं देखा जा सकता। वह दृष्टा का बिन्दु है। जो देख रहा है, उसको ही केवल देखा नहीं जा सकता। जो देख रहा है, इस जगत में उसको ही केवल देखा नहीं जा सकता। उस बिन्दु पर स्थिर होकर, व्यक्ति सत्य को अनुभव करता है, परमात्मा को अनुभव करता है और उस दिन जो प्रकाश उसमें उत्पन्न होता है, उस दिन जो प्रतीति में आता है, वह उसके सारे जीवन को बदल देता है। उसके बाद मृत्यु नहीं

रह जाती, क्योंकि उसे जान कर वह जानता है कि अमृत है। उसके बाद कोई दुः
ख नहीं रह जाता, क्योंकि उसे जान कर वह जानता है कि सब आनंद है। उसके बा
द सार जगत सच्चिदानंद रूप में परिणत हो जाता है।

ऐसी परिणति को साहसी ही उपलब्ध होते हैं। ऐसी परिणति को दुर्दम्य साहसी उपल
ब्ध होते हैं, दुस्साहसी उपलब्ध होते हैं। जो सब कुछ छोड़ कर, अनंत के सागर में
अपनी नाव को खेते हैं, जो सारे खूंटे तोड़ कर, अज्ञात सागर में अपने को छोड़ देते
हैं-अनजान, कहां जायेंगे, कुछ पता नहीं। जिन्हें तटों का मोह है, वे सत्य को नहीं
पा सकते। जिन्हें मझधार में डूब जाने का साहस है, जिन्हें किनारों का कोई मोह न
हीं, जो मझधार को ही किनारा मान सकते हैं, जो बीच सागर को भी सहारा मान
सकते हैं, केवल उनके लिए ही सत्य की खोज है।

ईश्वर ऐसा साहस पैदा करे, ईश्वर ऐसी हिम्मत दे, ईश्वर ऐसा दुर्दम्य बोध, ऐसी
अंतर्दृष्टि, ऐसी जिज्ञासा उत्पन्न करे तो हम इस सारी दुनिया में फिर से धर्म को प्रि
तष्ठित करने में समर्थ हो जायेंगे। जो धर्म वीरों का था, वह वृद्धों को बना हुआ है।
जो धर्म साहसियों का था, वह आलसियों का बना हुआ है। जिस धर्म पर केवल वे
ही चढ़ते थे, जो पर्वतों में अकेले अपने को खो देने का साहस रखते हैं, जिन्हें मृत
यु का कोई भय नहीं। लेकिन वह उनका बना हुआ है, जो मृत्यु से बहुत भयभीत हैं
, बहुत डरे हुए हैं और धर्म में अपना बचाव खोजते हैं। धर्म कोई सुरक्षा नहीं है,
धर्म कोई बचाव नहीं है। धर्म को इन अर्थों में शरण मत समझना। धर्म तो आक्रमण
है। जो लोग आक्रमण करते हैं सत्य पर, जो उसे विजय करते हैं, वे ही केवल उ
से उपलब्ध होते हैं।

ईश्वर ऐसी सदबुद्धि दे, ऐसा साहस दे, ऐसी हिम्मत दे कि अनंत सागर में आप अप
नी नाव को छोड़ सकें तो किसी दिन, किसी क्षण, किसी सौभाग्य के क्षण में, कोई
अनुभूति आपके जीवन को उपलब्ध होगी, जो आपको परिपूर्ण बदल देगी। जो आपक
ी सारी दृष्टि को बदल देगी। संसार तो यही होगा, लेकिन आप बदल जायेंगे। सब-
कुछ यही होगा, लेकिन आप दूसरे हो जायेंगे।

उस दूसरे हो जाने का नाम ही संन्यासी है। संन्यासी को अर्थ यह नहीं है कि जिसने
कपड़े बदले और भीख मांगने लगा वह संन्यासी हो गया या किसी ने टीका लगाया
और किसी ने कपड़े रंग लिये तो वह संन्यासी हो गया। और कोई घर में रहा तो
वह गृहस्थ हो गया। संन्यासी का यह अर्थ नहीं है। सत्य के अनुसंधान में इतने साह
स को लेकर जो कूद पड़ता है, वही संन्यासी है। और जिसके घरघूले हैं और जिसके
खूंटे हैं और जो अपने घर के बाहर नहीं निकलता, वही गृही है, वही गृहस्थ नहीं
होता और न कोई पत्नी-बच्चों के न होने से संन्यासी होता है और न कोई कपड़ों
के परिवर्तन से गृहस्थ होता है, न कोई संन्यासी होता है। अगर इन छोटी और ओ
छी बातों से दुनिया में संन्यासी होता है तो उसका मूल्य दो कौड़ी का हो जायेगा।
उसका कोई मूल्य नहीं रह जायेगा। संन्यास तो बड़े आंतरिक परिर्वतन की, इनर ट्रां

सफर्मेशन की बात है और वह परिर्वतन आंतरिक जीवन की दिशा को बदलने से शु
रू होता है।
उस दिशा के दो चरणों की मैंने आपसे बात की है-एक चरण है, जिज्ञासा को स्वतं
त्र और उन्मुक्त कर देना। आस्थाओं, श्रद्धाओं के खूंटों से उसे अलग कर देना। और
दूसरी बात है-तथ्यों के आर-पार देखना। जो तथ्यों के आर-पार देखता है, वही स
त्य को उपलब्ध होता है।
इन थोड़ी-सी बातों को आपने बड़े प्रेम और बड़ी शांति से सुना है, उसके लिए मैं ब
हुत अनुगृहीत हूं। ईश्वर की आप पर अनुकंपा हो, उसका प्रसाद आपको मिले, यह
कामना करता हूं और पुनः धन्यवाद देता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

2 : विसर्जन की कला
प्रश्न—आनंद थोड़ी देर के लिए अनुभव होता है और फिर चला जाता है। वह आनंद
और अधिक देर तक कैसे रहे?
उत्तर—यह बहुत महत्वपूर्ण है पूछना,क्योंकि आज नहीं कल, जो लोग भी आनंद की
साधना में लगेंगे, उनके सामने यह प्रश्न खड़ा होगा। आनंद एक झलक की भांति
उपलब्ध होता है-एक छोटी-सी झलक, जैसे किसी ने द्वार खोला हो और बंद कर दि
या हो। हम देख ही नहीं पाते उसके पार कि द्वार खुलता है और बंद हो जाता है।
वह आनंद बजाय आनंद देने के और पीड़ा का कारण बन जाता है, क्योंकि जो कुछ
दीखता है, वह आकर्षित करता है, लेकिन द्वार बंद हो जाता है। उसके बाबत च
ाह और भी घनी पैदा होती है, फिर द्वार खुलता नहीं, बल्कि फिर हम जितना उसे
चाहने लगते हैं, उतना ही उससे वंचित हो जाते हैं।
अगर मैं किसी व्यक्ति से चाहूं कि उसने इतना प्रेम दिया है मुझे और प्रेम दे तो जि
तना मैं चाहूंगा उतना मैं पाऊंगा कि प्रेम उससे आना कम हो गया। प्रेम उससे आन
ा बंद हो जायेगा। ये चीजें छीनी नहीं जा सकतीं, ये जबरदस्ती पजेस नहीं की जा
सकतीं। जो आदमी इनको जितना कम चाहेगा, जितना शांत होगा, उतनी अधिक
उसे उपलब्ध होंगी।
एक बहुत पुरानी कथा है-एक हिंदू कथा है, कहानी काल्पनिक ही है। नारद एक गां
व के करीब से निकले। एक वृद्ध साधु ने उनसे कहा कि तुम भगवान के पास जाओ
तो उनसे पूछ लेना कि मेरी मुक्ति कब तक होगी, मुझे मोक्ष कब तक मिलेगा?
मुझे साधना करते हुए बहुत समय बीत गया। नारद ने कहा-मैं जरूर पूछ लूंगा। वह
आगे बढ़े तो बरगद के दरख्त के नीचे एक नया-नया फकीर, जो उसी दिन फकीर
हुआ था, तंबूरा लेकर नाच रहा था। नारद ने उससे मजाक में पूछा-तुमको भी पू
छना है भगवान से कि कब तक तुम्हारी मुक्ति होगी? वह कुछ बोला नहीं ।
जब नारद वापस लौटे तो उस वृद्ध फकीर से उन्होंने जाकर कहा-मैंने पूछा था-भगव
ान बोले कि अभी तीन जन्म और लग जायेंगे। वह अपनी माला फेरता था, उसने गु
स्से में अपनी माला नीचे पटक दी। उसने कहा-तीन जन्म और! यह तो बड़ा अन्याय

है, यह तो हद हो गयी। नारद आगे बढ़ गए। वह फकीर नाच रहा था, उस वृक्ष के नीचे। उससे कहा-सुनते हैं! आपके बाबत भी पूछा था। लेकिन बड़े खेद की बात है, उन्होंने कहा कि वह जिस दरख्त के नीचे वह नाच रहा है, उसमें जितने पत्ते हैं, उतने जन्म लग जायेंगे। वह फकीर बोला-तब तो पा लिया और वापस नाचने ल गा। वह बोला-तब तो पा लिया, क्योंकि दरख्त पर कितने पत्ते हैं, इतने पत्ते, इतने जन्म न-तब तो जीत ही लिया, पा ही लिया। वह पुनः नाचने लगा। और कहानी कहती है, वह उसी क्षण मुक्ति को उपलब्ध हो गया-उसी क्षण।
यह तो नानटेंस, यह जो रिलेक्स्ड माइंड है, जो कहता है कि पा ही लिया, इतने ज न्मों के बाद की वजह से भी जो परेशान नहीं है और जो इसको भी अनुग्रह मान र हा है प्रभु का, इसको भी उसका प्रसाद मान रहा है कि इतनी जल्दी मिल जायेगा, वह उसी क्षण सब पा लेता है। हमारे मन की दो स्थितियां हैं। एक टेंस स्थिति होती है। जब हम कुछ चाहते हैं कि मिल जाये और दूसरी नानटेंस स्थिति होती है, जब कि हम चुपचाप जो मिल रहा है, उसको रिसीव हरते हैं, कुछ झपटते नहीं हैं। टें स स्थिति एग्रसिव होती है, वह झपटती है। नानटेंस स्थिति रिसेप्टिव है, वह छीनती नहीं, वह चुपचाप ग्रहण करती है। ध्यान जो है, वह एग्रेशन नहीं है रिसेप्शन है। व ह आक्रमण नहीं है, वह आमंत्रण है। वह झपटता नहीं कुछ, जो आ जाता है, उसे स्वीकार कर लेता है।
तो आनंद के क्षणों को, शांति के क्षणों को झपटने की, पजेस करने की कोशिश न करें। वे ऐसी चीजें नहीं हैं कि पजेस की जा सकें। वह कोई फर्नीचर नहीं है जो हम बस से उठा कर कमरे में रख लें। वह तो उस प्रकाश की तरह है कि द्वार हमने खोल दिया, बाहर सूरज उगेगा तो प्रकाश अपने-आप भीतर आयेगा। हमारे लिए प्र काश को बांध कर भीतर लाना नहीं पड़ता है। सिर्फ द्वार खोल कर प्रतीक्षा करनी होगी, वह आयेगा। वैसे ही मन को शांत करके, हम चुपचाप प्रतीक्षा करें और जो ि मल जाए, उसके लिए धन्यवाद करें और जो नहीं मिला, उसका हिसाब न करें तो आप पायेंगे कि रोज-रोज आनंद बढ़ता चला जायेगा। बिना मांगे कोई चीज मिलती चली जाएगी, बिना मांगे कोई चीज गहरी होती चली जाएगी। और अगर मांगना शु रू किया, जबरदस्ती चाहना शुरू किया तो पायेंगे कि जो मिलता था, वह भी मिलन ा बंद हो गया।
समस्त साधकों के लिए जो आत्मिक आनंद की तलाशें चलती हैं, उसमें सबसे बड़े खतरे के क्षण तब आते हैं, जब उनको थोड़ा-थोड़ा आनंद मिलने लगता है। बस, अ क्सर वहीं रुकना हो जात है। वह मिला कि उनको मन होता है और मिल जाए। अ ौर जहां उनका मन यह हुआ कि और मिल जाए, वह जहां एग्रसिव हुए पाने के ि लए, वह जो मिलता है, उसके दरवाजे भी बंद हो जायेंगे। तो इतना स्मरण रखें, जो मिलता है उसके लिए भगवान का धन्यवाद करें और जो नहीं मिलता है, उसक ी फिक्र न करें और अपने भीतर शांत होने के प्रयास में संलग्न रहें। क्या मिलता है, इसकी चिंता छोड़ दें। हम क्या बन रहे हैं, शांत कैसे बन रहे हैं, इसकी चिंता न

करें। जिस मात्रा में आप शांत हो जाएंगे, उस मात्रा में आनंद मिलना अनिवार्य है। उसकी फिक्र छोड़ दें। यानी इसकी बिलकुल फिक्र छोड़ दें कि क्या मिला, क्योंकि ज ो भी मिलने की आपकी क्षमता पैदा हो जायेगी, उसके आप हकदार हैं, वह आपको मिलेगा ही।

इसी संदर्भ में आपने पूछा है, लोग कहते हैं कि हम बुरा कर्म करते हैं तो बुरा परि णाम मिलेगा। अच्छा काम करेंगे तो अच्छा परिणाम मिलेगा।

यह जो हम सोचते हैं, मिलेगा,फ्यूचर की भाषा में, यह गलत है। हमने बुरा काम ि कया, उसी क्षण बुरा हो गया। कुछ आगे नहीं मिलेगा। उसी क्षण, हमारे भीतर कु छ बुरा हो गया। हमने कुछ भला किया, उसी क्षण हमारे भीतर कुछ भला हो गया । हम अपने को कांसटेंटली क्रियेट कर हरे हैं, हमारा प्रत्येक कर्म हमको बना रहा है। बनायेगा नहीं, इसी क्षण बना रहा है। हम जिसको जीवन कहते हैं वह जीवन ह ी नहीं है, वह एक सेल्फ क्रियेशन भी है। वह जो हम कर रहे हैं, उससे हम बन र हे हैं। हमारे भीतर कुछ बन रहा है, कुछ घना हो रहा है। कुछ अपने ही भीतर हम अपने चैतन्य का निर्माण कर रहे हैं, उससे हम बन रहे हैं। हमारे भीतर कुछ बन रहा है, कुछ घना हो रहा है। कुछ अपने ही भीतर हम अपने चैतन्य का निर्माण क र रहे हैं। तो हम जो-जो कर रहे हैं, ठीक उसके अनुकूल या उसके जैसा हमारे भी तर कुछ बनता चला जा रहा है।

लोग कहते हैं कि आप नरक में चले जायेंगे या स्वर्ग में चले जायेंगे कुछ इस तरह की बात करते हैं कि स्वर्ग और नरक, भूगोल में, ज्याग्रांफी में कहीं होंगे। लोग जि स तरह की बात करते हैं, मैं ऐसी बात नहीं करता। नरक और स्वर्ग ज्याग्राफी में नहीं हैं, साइकोलाजी में हैं। वह भौगोलिक धारणाएं नहीं है, मानसिक धारणाएं हैं! जब आप बुरा करते हैं, उसी क्षण नरक में चले जाते हैं। मैं अपनी धारणा आपसे कह रहा हूं-जब मैं क्रोध करता हूं तो मैं उत्तप्त हो जाता हूं और अग्नि की लपटों में अपने आप चला जाता हूं उसी वक्त।

तो नर्क में आप चले जायेंगे, ऐसा नहीं है या स्वर्ग में कभी आप चले जायेंगे, ऐसा भी नहीं है। चौबीस घंटों में आप अनेक बार नर्क में होते हैं और अनेक बार स्वर्ग में होते हैं। जब-जब आप क्रोध से भरते हैं, उत्ताप और तीव्र वासना से भरते हैं त ब-तब आप आपने भीतर नर्क को आमंत्रित कर लेते हैं। लोग कहते हैं कि आप न रक में चले जायेंगे या स्वर्ग में चले जायेंगे तो मेरा मानना ऐसा है कि आप में नर क और स्वर्ग, अनेक बार आ जाता है। वह आपकी मानसिक घटना है। कहीं जमी न फोड़ कर नीचे नरक नहीं मिलेगा। और कहीं आकाश में में खोजने से, कहीं कोई स्वर्ग नहीं मिल जायेगा।

और आप हैरान होंगे कि सारी दुनिया के लोगों की, स्वर्ग-नरक की धारणाएं भिन्न-भिन्न बनी हैं, क्योंकि वह तो साइकोलाजिकली है। तिब्बत-तिब्बत में जो नरक है, उनकी जो कल्पना है नरक की, वह बड़े ठंडे स्थान की है, क्योंकि तिब्बत में ठंडक बहुत कष्टप्रद है, ठंडक से कष्ट प्रद, तिब्बत में कुछ भी नहीं है। तो तिब्बत कि जो

कल्पना है नरक की कि जो पानी होंगे, वह ऐसे स्थान में जायेंगे जहां इतनी ठंडक है कि उनकी मुसीबत हो जायेगी। इस ठंडक से बड़ी मुसीबत नहीं है कोई। हमारे मुल्क की जो कल्पना है नरक की, वह अग्नि की लपटों वाली है। वहां ठंडक नहीं है। नहीं तो हमको तो वह हिल-स्टेशन साबित होगा। तो हमारे मुल्क में हम स ोचते हैं, तो नरक है, वहां अग्नि की लपटें उठ रही हैं, उसमें डाला जायेगा और क. डाहियां गर्म हो रही हैं तेल की, उनमें पटका जायेगा। वे हमारी कल्पनाएं हैं, क्योंकि गरमी हमें कष्ट देती है तो हम सोचते हैं कि पापी हो कष्ट देने के लिए तो गरम जगह होगी। तो नरक तिब्बत में ठंडी जगह है और भारत में गरम जगह है। नरक ऐसा नहीं हो सकता है या उसमें ऐसे खंड नहीं हो सकते कि वहां ठंडा ही नरक है।

तो असल में, यह हमारी कष्ट की जो कल्पनाएं हैं, उनको हम इस भांति कल्पित कर लेते हैं। कष्ट मानसिक घटना है, भौगोलिक घटना नहीं है। अभी भी आप जब बुरा हरते हैं तो आपके भीतर अत्यंत कष्टप्रद स्थितियों का निर्माण होता है। अभी कभी-कभी होता है, अगर आप निरंतर बुरा करते जायेंगे तो वह सतत होने लगेगा और करते ही चले जायेंगे तो एक घड़ी ऐसी आ सकती है कि आप चौबीस घण्टे नरक में होंगे। तो आदमी कभी नरक में होता है, कभी स्वर्ग में होता है। फिर बहुत बुरा आदमी, अधिकतर नरक में रहने लगता है, बिलकुल भला आदमी, बिलकुल स्वर्ग में रहने लगता है। जो भले और बुरे दोनों से मुक्त है, वह आदमी मोक्ष में रहने लगता है। मोक्ष में रहने का मतलब है आनंद। कोई स्थान नहीं है, कहीं स्पेस में खोजने पर, यह जगहें नहीं मिलेंगी कि यह रहा स्वर्ग और यह रहा नरक। इसलिए मनुष्य की जो साइकोलाजी है, उसका जो मानसिक जगत है, उसके विभीजन हैं। तो मानसिक जगत के तीन विभीजन हैं-नरक, स्वर्ग और मोक्ष। नरक से जैसा आज सुबह मैंने कहा दुःख, स्वर्ग से जैसा मैंने आज सुबह कहा सुख, मोक्ष से मेरा मतलब है न सुख, न दुःख, वह जो आनंद है।

तो यह मत सोचिये कि कल कभी ऐसा होगा कि हम बुरा करेंगे तो उसका बुरा फल होगा। यह मत सोचिये कि हम भला करेंगे तो भला फल होगा। जो भी हम कर रहे हैं, साइमलटेनियसली, उसी वक्त, क्योंकि वह हो ही नहीं सकता कि अभी क्र ोध करूं और अगले जन्म में मुझे उसका फल मिले, यह बड़ी ब्लफ हो जायेगी, यह बात फिजूल हो जायेगी, क्योंकि उतनी देर क्या होगा? मैं अभी क्रोध करूं, अगले जन्म में मुझे फल मिले, यह बात बड़ी फिजूल हो जायेगी। इतनी देर क्यों होगी? मैं जब क्रोध कर रहा हूं, क्रोध के करते ही क्रोध का फल भोग रहा हूं। क्रोध के बाहर क्रोध का फल नहीं है। क्रोध ही मुझे वह पीड़ा दे रहा है जो क्रोध का फल है। और जब मैं अक्रोध कर रहा हूं तो मुझे उसी क्षण फल मिल रहा है, क्योंकि अक्रोध का जो आनंद है, वही उसका फल है। जब मैं किसी की हत्या करने जा रहा हूं तो हत्या करने में ही मैं कष्ट भोग रहा हूं, जो कि हत्या करने का है और जब मैं कि

सी की जान बचा रहा हूं तो जान बचाने में ही मुझे वह सुख मिल रहा है, जो कि उसमें छिपा है।

मेरी बात आप समझ रहे हैं न? कर्म ही फल है, कर्म का कोई फल नहीं होता, कभी भविष्य में नहीं। कर्म-प्रत्येक कर्म का अपना फल स्वयं है। तो बुरा कर्म मैं उस को नहीं कहता जिसके बाद में बुरे फल मिलेंगे। बुरा कर्म मैं उसको कहता हूं जिस का बुरा फल उसी क्षण मिल रहा है। फल को जांच कर ही अनुभव कर लेना कि कर्म बुरा है या भला। जो कर्म अपनी क्रिया के भीतर ही दुःख दे, वही बुरा है।

प्रश्न-अस्पष्ट टेप रिकार्डिंग।

उत्तर-उसी क्षण हो रहा है, फर्क इतना है। आप कितने ही हैबीच्युअल हो जाएं, कि तने ही हैबीच्युअल हो जाएं। जैसे समझ लीजिए, एक आदमी को निरंतर क्रोध करने की आदत हो जाए तो आप सोचते हैं, क्रोध उसे पीड़ा नहीं देगा? उसे तो और भ ी पीड़ा देगा। आप ऐसा समझिये, आप में से कुछ लोग कभी-कभी क्रुद्ध होते हैं, फि र कुछ क्रुद्ध रहने ही लगते हैं। इतनी आदत हो जाती है कि वे चौबीस घण्टे क्रुद्ध रहते हैं। और वे मौके की तलाश में रहते हैं कि कभी आप कुछ मौका दें और वे क्रोध जाहिर कर दें। वे क्रुद्ध हैं। वे चढ़े हुए हैं क्रोध में। वे घूम रहे हैं चारों तरफ ि क आप मौका दें और वह क्रोध को जाहिर करें।बाकी वे क्रुद्ध हैं, उनके चेहरे के भी तर उनकी पीड़ा आप अनुभव कर सकते हैं। बड़ी पीड़ा तो यह है कि वह सारे सुख और शांति के सब क्षणों से वंचित हो गये, क्योंकि जो निरंतर, चौबीस घण्टे भीतर क्रुद्ध है, वह किसी शांति के क्षण को कभी अनुभव नहीं करेगा। वह किसी प्रेम के क्षण को कभी अनुभव नहीं करेगा, वह किसी आनंद के क्षण को कभी अनुभव नहीं करेगा। वह सब द्वार तो उसने अपने क्रोध से ही बंद कर लिये। वह जो टैंशन चल रहा है, चौबीस घण्टे क्रोध का, उसने सारे महत्वपूर्ण क्षणों को बंद कर दिया। बड़ा दंड तो उसे यह मिल गया और फिर क्रोध की जो अग्नि है, वह अलग उत्ताप दे र ही है उसे। उसके शरीर को भी कष्ट दे रही है, उसके मन को भी कष्ट दे रही है और निरंतर उसे नीचे ले जाती चली जाएगी।

दो तरह के इमाशंस हैं-नैगेटिव और पॅजिटिव। इमोशंस हैं, जैसे क्रोध है, घृणा है। इ नसे आपको तत्क्षण नुकसान हो जाता है। आगे कभी नहीं, उसी वक्त आप में से कु छ खो जाता है, आप खंडित हो जाते हैं, आप नीचे हो जाते हैं। आप कभी अनुभव करें कि क्या हुआ? आप पायेंगे कि आप ऊंचे तल पर थे, नीचे आ गये। आप कह ीं शांति में थे, वह शांति गयी, आप बड़ी अशांति में आ गये। आप पायेंगे, कुछ अग र ताजगी थी भीतर तो वह ताजगी खो गयी, सब बासी-बासी हो गया। आपमें अग र कोई शक्ति अनुभव होती थी, वह शक्ति चली गयी और आप बहुत थके-थके मा लूम हो रहे हैं। जो-जो चित्त की प्रक्रियाएं आपको थकान लाती हों, कष्ट लाती हों, उदासी लाती हों, नीचे उतर जाने का भाव लाती हों, अशांति लाती हों, वे सब ने गेटिव हैं। पॉजिटिव नहीं हैं कि जिनको करने के बाद आप अनुभव करते हैं कि आप और ताजा हो गये। जिनको करने के बाद आप अनुभव करते हैं कि और शक्ति अ

नुभव हो रही है, जिनको करने के बाद आपको अनुभव होता है की शांति घनी हो गयी, जिनको करके आपको अनुभव होता है कि आपने दो सीढ़ियां अपने आंतरिक जीवन में ऊपर चढ़ी हैं। यह निरंतर आपको अनुभव होगा। दोनों तरह के काम आप कर रहे हैं और दोनों तरह के काम का हर एक को अनुभव है।
तो मेरी धारणा है कि कोई कर्म भविष्य में फल नहीं लाता। कर्म ही फल है उसी क्षण। कोई हिसाब-किताब कौन रखेगा? इससे मतलब क्या है? यह सब फिजूल का, पागलपन का खयाल है कि कोई हिसाब-किताब रखेगा और फिर आपको नरक भेजेगा या स्वर्ग भेजेगा।
प्रश्न-अस्पष्ट टेप रिकार्डिंग।
उत्तर-कोई हिसाब नहीं, अपनी धारणा मैं आपसे कहता हूं। एक-एक कर्म हमने किया, करने में ही हमने उसे भोग लिया। तो बुरा कर्म नरक में नहीं ले जायेगा, बुरा कर्म नरक है। भला कर्म स्वर्ग में नहीं ले जायेगा, भला कर्म स्वर्ग है। और वह तीसरी स्थिति की जो मैंने बात कही जो कि कर्म के बाहर है, वह आनंद है, वह मोक्ष है। न वहां शुभ कर्म है, न वहां अशुभ कर्म है। न वहां क्रोध है, न क्रोध को क्षमा करना है। वहां वह कुछ भी नहीं है। वहां वे दोनों बातें नहीं हैं-वहां परम शांति है।
आपने पूछा, क्रोध को हम क्या करें? वह जो हममें उठता है, वह जो हममें घना होता है, उसको क्या करें?
हम दो ही काम करते हैं। क्रोध उठने पर हम दो ही काम करते हैं। एक काम तो हम रोज करते हैं कि जैसे ही क्रोध उठता है, हम उसे किसी को बिन्दु बना कर निकालते हैं। मुझे क्रोध उठा तो मैं किसी को बिन्दु बनाऊंगा और निकालूंगा। एक तो यह है। दूसरा काम यह है कि जब क्रोध उठता है, तब मैं किसी को बिन्दु नहीं बनाता, अपने को ही बिन्दु बनाता हूं और उसे दबा लेता हूं। मतलब दो हैं। या तो मैं उसे निकालता हूं या दबा लेता हूं।
दोनों स्थितियों में भारी गलती हो जाती है कि जब मैं किसी पर उसे निकालता हूं, जब मैं उस वेग को किसी पर निकालता हूं तो मुझे उसे निकालने की आदत पड़ जाती है। यानी कल मैं उसे और जल्दी निकालूंगा, परसों फिर और जल्दी निकालूंगा। एक दिन ऐसी हालत आयेगी कि मैं उसे बिना कारण निकालने लगूंगा। एक दिन ऐसी हालत आयेगी कि मुझे इससे मतलब ही नहीं रहेगा कि इसमें कुछ संबंध भी था कि मैं निकालूंगा। हम चौबीस घण्टे जो क्रोध करते हैं, उसमें अनेक बार उन लोगों पर क्रोध कर रहे होते हैं, जिनका कोई संबंध नहीं था।
अक्सर हम उन लोगों का क्रोध, जिनका संबंध था, उन पर भी निकालते हैं जिनका उससे कोई संबंध नहीं था। हो सकता है, आप दुकान पर किसी से क्रुद्ध हुए हों और नहीं निकाल सकते, घर में बच्चे पर निकाल सकते हैं, पत्नी पर निकाल सकते हैं। फिर क्रोध कहीं भी निकलने लगेगा, फिर वह धीरे-धीरे बिलकुल रेशनल हो जायेगा उसमें यह फिक्र नहीं रहेगी कि इसने कुछ किया है या नहीं। आप हैरान होंगे ि

क आप चीजों तक पर क्रोध निकाल लेते हैं। दरवाजा नहीं खुलता हैं तो उसको जो
र से धक्का देते हैं, गाली भी देते हैं। और कभी-कभी सोचने की बात है कि दरवा
जे को गाली देना या दरवाजे को धक्का देना, कौन-सी अक्ल की बात हो सकेगी!
मैं लोगों को देखता हूं, कलम स्याही नहीं फेंक रही तो गाली देकर उसे पटक देते
हैं । मैं बड़ा हैरान होता हूं। इस कलम पर भी उनका क्रोध निकल रहा है। बिलकु
ल ही इस क्रोध से कोई मतलब नहीं। तो जो आदमी कलम पर क्रोध निकाल रहा
है, उसके क्रोध से क्या घबड़ाना। मतलब वह आपसे भी ऐसे ही निकाल रहा है, इस
से कोई मतलब थोड़े ही है। उसके लिए तो मुद्दा चाहिए, कहीं भी निकाल रहा है।
जापान में एक साधु हुआ, उससे एक जर्मन विचारक मिलने गया था। जब वह उस
से मिलने गया तो वह के आदमी से कह रहा था कि जाकर जूते से क्षमा मांग कर
आओ। तुमने जूते गुस्से में निकाले हैं। जर्मन विचारक बड़ा हैरान हुआ कि यह क्य
ा पागलपन हो रहा है! वह उससे कह रहा है कि तुम जूते से क्षमा मांग कर आओ
और वह आदमी पागल, गया भी। वह तो बड़ा हैरान हुआ कि यह क्या करवा रह
ा है। यह आदमी गया, उसने जूते से जाकर क्षमा मांगी कि महानुभव क्षमा करिये।
तो उसने साधु से पूछा-मैंने सुना था कि पूरब के साधु बड़े पागल होते हैं। यह क्या
पागलपन है कि जूते से क्षमा मांगवाते हैं?

वह बोला कि इस आदमी ने जूता क्रोध में उतारा। अगर आप जूते को क्रोध में उ
तारने योग्य मानते हैं तो फिर क्षमा योग्य भी मानना चाहिए। उसने जूते को ऐसे उ
तारा जैसे कि वह उस पर क्रोध कर रहा है। उस आदमी ने कहा-हां, मैंने क्रोध कि
या। मैं क्रुद्ध तो किसी और बात से था। जूते ने जरा देर कि उतरने में, इसलिए मैं
ने उसे गुस्से से उतारा था। अब इस साधु ने मुझसे क्षमा मांगवायी है जूते से कि तू
क्षमा मांग कर आ, तो ही अंदर आ, नहीं तो क्या फायदा, अंदर आने में?

हम महानुभव करें अगर तो हम पायेंगे कि क्रोध निकास लेता है। जो उसे निकालने
की निरंतर आदत में पड़ जायेगा, वह धीरे-धीरे उसे निकालता ही रहेगा। और जि
तना क्रोध निकलेगा, उतनी आत्मा शक्तिहीन होती चली जायेगी। तो क्रोध को निक
ालने का रास्ता तो गलत है, क्योंकि उससे क्रोध और घना होगा।

और एक रास्ता यह है कि क्रोध का दमन करो। जो भी लोग क्रोध से बचना चाहते
हैं, फिर वे दूसरे रास्ते का उपयोग करते हैं। जब क्रोध आये तो ऊपर मुस्कुराहट
कायम रखो और क्रोध को भीतर दबा लो। हममें से अधिकांश लोग यही करते हैं,
अनेक कारणों से। कुछ लोग करते हैं धार्मिक वजह से कि क्रोध करना बुरा है, इस
से नरक में जाना पड़ेगा। कुछ लोग शिष्टाचार के वश कि कैसे क्रोध करें! कुछ लोग
, कुछ सामाजिक संबंधों के कारण कि कैसे क्रोध करें! कुछ इसलिए कि मालिक
के साथ नौकर कैसे क्रोध करे? तो हम अपने को दबाते हैं, दमन करते हैं और रिप्रे
शन करते हैं।

जब आप क्रोध को दबाते हैं, तब भी आप नुकसान कर हरे हैं, क्योंकि दमित क्रोध
जायेगा कहां? वह तो भीतर ही घूमेगा। वह कांशस माइंड में घूमेगा। आप ऐसे स

पने देखेंगे, जिसमें आपने किसी हत्या कर दी। आप मन ही मन ऐसी कल्पना करेंगे कि उसके मकान में आग लगा दी या उसको जूते मार रहे हैं या कुछ कर रहे हैं। मन ही मन चलेगा यह। यह आपके भीतर सरकेगा और चित्त को विकृत करेगा और घुन लगा देगा। यह भी क्रोध है, यह आंतसिक दमन हुआ, यह चल रहा है भीतर।

पहले से नुकसान था कि आदत पड़ती गयी, इससे नुकसान यह है कि आप धीरे-धीरे क्रोध से उत्तप्त रहने लगेंगे। उससे वेग निकलेंगे नहीं, वह वेग भीतर घुमड़ेंगे। ऐसा आदमी बड़ा घातक है। वह कभी इतना खतरनाक क्रोध करेगा, जो कि पहले वाला आदमी कभी नहीं कर सकता। इसलिए बहुत दफे, बहुत सीधे-सादे दिखने वाले लोग हत्याएं कर देते हैं। आम तौर से बहुत क्रोधी लोग हत्या नहीं करते, क्योंकि उनका क्रोध रोज-रोज निकलता रहता है। लेकिन जो क्रोध का दमन करता चला जायेगा, कई दफे यह अनुभव होगा कि यह आदमी तो बड़ा सीधा था, उसने यह काम कैसे किया? उसने बहुत दमन किया। वेग बहुत इकट्ठा हो गया। फिर किसी चीज से वह क्रुद्ध हो गया और सारा वेग बहुत इकट्ठा निकल गया और तब वह बहुत खतरनाक काम कर सकता है। यह वेग किसी दिन निकल सकता है। ऐसा आदमी पागल हो सकता है। यह वेग इतना ज्यादा दमित हो जाए कि इसके निकलने का रास्ता न रहे तो दिमाग खराब हो जायेगा।

कोई भी वासना कोई भी वेग किया जाए तो आदत बनती है, दमन किया जाए तो विक्षिप्त कर सकता है। तो दूसरा रास्ता भी रास्ता नहीं है। न तो मैं क्रोध निकालने को कहता हूं, न ही दबाने को कहता हूं। मैं तीसरी बात कहता हूं। मैं उसका विसर्जन करने को कहता हूं। एक है क्रोध का भोगना, एक है क्रोध का दमन करना और एक है क्रोध का विसर्जन करना। विसर्जन करने की बात समझने की बात है।

जब क्रोध उठे तो न तो उसे किसी पर प्रकट करिये, क्योंकि आपमें क्रोध उठा, इसके लिए कोई दूसरा जिम्मेवार नहीं है। आप ही जिम्मेवार हैं, इसको स्मरण रखिये। हम आमतौर से बोझ दूसरे पर डाल देते हैं कि मुझे इसलिए क्रोध उठा कि उस आदमी ने गाली दी। लेकिन किसी की गाली, मुझमें क्रोध को नहीं उठा सकती, अगर मुझमें क्रोध न हो। मेरे भीतर जो है, उसी को कोई दूसरा मुझमें उठा सकता है। यहां हम परदा खोलें, यहां इतने लोग बैठे दिखाई पड़ रहे हैं तो परदा खोलने वाला, इतने लोगों को परदा थोड़े ही कर रहा है। वह परदा खोल भर रहा है। यहां इतने लोग दिखाई पड़ते हैं। ये यहां मौजूद हैं। जब एक आदमी आपको गाली देता है तो आपमें क्रोध थोड़े ही पैदा करता है, आपके भीतर परदा खोलता है, क्रोध आपके भीतर मौजूद है। अगर वहां क्रोध मौजूद न हो तो गाली क्रोध नहीं ला सकती।

मेरी बात समझे न। वहां क्रोध मौजूद है, इसलिए गाली क्रोध लाती है। वहां अभिमान मौजूद है, इसलिए सम्मान सुख लाता है। एक आदमी आपका बड़ा आदर करता है, आप बड़े सुखी हो गये। आप सोचते हैं सुख उसने दिया! वहां तो अभिमान मौजू

द था, उसने परदा खोल दिया सम्मान करके। वहां बड़ा अच्छा लगने लगा। उसने ग ाली दे दी तो अपमान हो गया। वहां अभिमान मौजूद था तो आप क्रुद्ध हो गये। आपके भीतर चीजें मौजूद हैं, बाहर के लोग केवल जो मौजूद है, उसी को प्रकट क रने का कारण बन सकते हैं। आपके भीतर कोई भी, कुछ भी पैदा नहीं कर सकता है। इसे स्मरण रखें कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति में कुछ भी पैदा नहीं कर सकता है। सिर्फ जो उसमें मौजूद है, उसको दिखला सकता है। दूसरे पर तो क्रोध को कभी कारण न मानिये कि दूसरे ने क्रोध करवा दिया है। फिर इसलिए दूसरे के चिंतन का तो सवाल ही नहीं रहता।

और फिर मैंने परसों रात, जैसा आपसे कहा कि जब-जब आप उसका चिंतन करने लगेंगे, तब-तब क्रोध को आप देख नहीं पायेंगे। आप उसको देखने लगे जिसने गाली दी। मैं उसका विचार करने लगा। उसी बीच क्रोध मुझे पकड़ लेगा और मथ डालेगा। उसी बीच मैं नरक में उतर जाऊंगा। तो जब उसने गाली दी, तब उसकी फिक्र छोड़ें, आंख बंद करके आपने क्रोध को देखें। तो एक रास्ता निकालने का था, वह तो उपयोग का नहीं है। दूसरा रास्ता दमन करने का था, वह भी उपयोग का नहीं। तीसरा रास्ता है, न तो निकालें और न दमन करें। आंख बंद कर लें। क्रोध का साक्षात्कार करें। उसके साक्षी बनें, उसके कवटनेस बनें। उसको देखें, सिर्फ देखें। उसे पूरा उठने दें। उससे कह दें कि उठो, हम तुम्हें देखते हैं, तुम क्या हो! न तो हम निकालेंगे, हम दमन करेंगे, हम तो तुम्हें देखेंगे।

एकांत कोने में बंद हो जायें, साधना का बड़ा अद्भुत क्षण है। क्रोध पकड़े तो उसे साधना के लिए अद्भुत क्षण समझें। मंदिर जाने से वह लाभ न होगा, जो क्रोध में आ जाने से हो सकता है। दरवाजा बंद कर दें, एकांत में शांत होकर बैठ जायें, आंख बंद कर लें और कृपा समझें उस आदमी की जिसने इस क्रोध को देखने का आपको मौका दिया, जो आपके भीतर था। इस नरक का आपको मौका दिया। आंखें बंद कर लें, अब इस पूरे क्रोध को उठने दें और चुपचाप इसे देखें। इसे कुछ न करें, इसे छेड़े-छोड़े नहीं। 'जस्ट अवेयरनेस' इसके बाबत पैदा करें कि देख रहे हैं हम उसे। उसे उठने दें, उसके पूरे रूप को फैलने दें, चुपचाप देखते रहें। न तो उसे किसी पर अभी निकालने कि कोशिश करें और न दबाने की।

प्रश्न-अस्पष्ट टेप रिकार्डिंग।

उत्तर-शांत-अपने को बंद कर लें कहीं चुपचाप और जो भी उठता है उसे देखें। सिर्फ देखें, कुछ न करें। एक क्षण को उठेगा, उसको ही देखें, कोई फिक्र नहीं है। आप गलत खयाल में हैं कि क्रोध एक क्षण को उठता है। उसका उभार बड़ी देर तक रहता है। उठता है, एक क्षण को होगा। उसकी सरकती धुएं की रेखा बहुत देर तक चलती है। कोई फिक्र नहीं है, अगर वह अपनी पूरी जवानी में न दिखाई पड़े। बुढ़ापे में दिखाई पड़े तो भी कोई हर्ज नहीं। देखने का प्रयोग शुरू करें। देखने का अभ्यास घना होगा तो किसी दिन वह बिलकुल आपने जन्म में भी पकड़ा जो सकेगा। अभी तो ऐसा ही होगा कि वह आखिरी लकीर उसकी दिखाई पड़ेगी।

अभी तो ऐसा होगा कि क्रोध करने की जो पुरानी आदतें हैं, उसमें अगर बैठें भी ए कांत निरीक्षण को तो उसकी आखिरी जाती हुई लकीर दिखाई पड़ेगी। कोई हर्ज न हीं, पर वह भी शुरुआत अच्छी है। कुछ तो दिखा। और कुछ दिखेगा। और कुछ दि खेगा। किसी दिन पूरा क्रोध आपको दिखाई पड़ेगा। और एक बड़ा अद्‌भुत अनुभव ह ोगा वह। उसका अभ्यास थोड़ा घना हो जायेगा और आप क्रोध को देखने में समर्थ हो जायेंगे तो आप देखेंगे कि न तो क्रोध किसी के ऊपर जा रहा है और न दमित हो रहा है। वह विसर्जित हो रहा है, इवेपोरेट हो रहा है। न तो किसी की ओर जा रहा है, किसी आदमी के प्रति अब नहीं है वह और न अपने भीतर दमन हो रहा है। वह भाप की तरह, जैसे भाप उड़ती जा रही है, वह वैसा उठ रहा है और निक लता जा रहा है। वह क्रोध उठता हुआ, निकलता हुआ मालूम होगा। किसी व्यक्ति के प्रति नहीं।

वह विलीन होता हुआ मालूम होगा, वाष्पीभूत होता हुआ मालूम होगा और इतनी परम शांति का अनुभव होगा उसके वाष्पीभूत होने पर कि जिसकी आप कल्पना नह ीं कर सकते। जो क्रोध आपको नर्क में ले जाता है, वही क्रोध आपको स्वर्ग में ले ज ाता है। उसका दमन करते हैं तो नर्क में जाते हैं, उसको किसी पर प्रकट करते हैं तो नर्क में जाते हैं, उसे कुछ भी नहीं करते, इन दोनों में से कुछ भी नहीं करते-न दमन करते हैं, न प्रकट करते हैं, उसके साक्षी बनते हैं, उसका आब्जर्वेशन करते हैं। उसको देखते हैं कि यह क्या है वेग। और जो मैं क्रोध के संबंध में कह रहा हूं, वह अन्य शक्तियों के संबंध में भी ठीक है। सैक्स हो, लोभ हो या कुछ और हो, जो भी वेग पड़ते हों चित्त को, उनके निरीक्षक बनें। उन पर सेल्फ आब्जर्वेशन शुरू करें। आब्जर्वेशन में और थिंकिंग में फर्क समझ लें। क्रोध को विचारने को नहीं कह रहा हूं कि आप विचार करें कि क्रोध क्या है। पुराने ग्रंथों में क्या लिखा है क्रोध के बाबत, वह मैं नहीं कह रहा। उसमें तो फिर आप निरीक्षण नहीं कर पायेंगे। क्रोध के संबंध में सोचने को नहीं कह रहा हूं, क्रोध को देखने को कह रहा हूं।

यह मत सोचिये कि क्रोध बड़ी बुरी चीज है और फलां ने कहा है कि क्रोध नहीं क रना चाहिए। यह मैं नहीं कह रहा आपसे। यह तो सोचना होगा। क्रोध को देखने को कहा रहा हूं। अंतर्दृष्टा बनें, उसको देखें। आंख गड़ायें उसके ऊपर और जानें कि य ह क्या है। कोई निर्णय न लें। वही मैं परसों कहता था। उसके बाबत निर्णय न लें ि क वह अच्छा है कि बुरा है। इतना ही जानें कि कुछ है जिसे हम देखें कि क्या है। आप हैरान हो जायेंगे, अगर ऐसा निरीक्षण किया। तो पहले निरीक्षण में आपको ए क अद्‌भुत बात मालूम पड़ेगी कि जितना हिस्सा आप क्रोध का निरीक्षण कर लेंगे, उतना हिस्सा विलीन हो जायेगा। वह आपके भीतर सरकेगा नहीं। देख लेने के बाद, विलीन हो जाने के बाद, वह आपका पीछा नहीं करेगा, जो अभी करता है।

अभी मैंने ऐसा अनुभव भी किया। ऐसे लोग भी हैं, जिनका पीछा बीस साल पहले का क्रोध भीतर रहा है। ऐसे लोग भी हैं कि उनके बाप को किसी ने क्रोधित किया था, वह उनका पीछा कर रहा है, जन्म से। यानी पुश्तैनी दुश्मनी भी चलती है कि

हमारे बाप से उनका झगड़ा था। वह अभी भी चल रहा है। वह क्रोध अभी उनका पीछा कर रहा है। अजीब-सी बात है और आपका भी क्रोध पीछा करता है वर्षों त क। उस आदमी को देख कर आप फिर उत्तप्त हो जाते हैं, वह जो रखा है भीतर। यानी हो वर्ष पहले आपको गुस्सा दिलाया था, वह आदमी कहीं दिखाई पड़ जाए औ र आप पायेंगे कि आपके भीतर से कोई चीज जग गयी, कोई सांप भीतर उठ खड़ा हुआ है और परेशान कर रहा है।

तो जितना आप निरीक्षण कर लेंगे, उतने से आप बाहर हो जाएंगे। वह आपका पी छा नहीं करेगा। जितना क्रोध कि पूरी घटना का निरीक्षण करने में समर्थ हो जाएंगे , उतना आप पाएंगे कि क्रोध गया। थोड़े दिन निरीक्षण करने पर क्रोध विलीन हो जायेगा। इसके बाद क्रोध आना कठिन हो जायेगा, जब परीक्षण परिपूर्ण हो जायेगा। आब्जर्वेशन पूरा हो जायेगा तो क्रोध आना मुश्किल हो जायेगा, क्योंकि इसके पहले वह आये और आप आब्जर्वेशन में लग जाएंगे। अभी मैंने कहा, वह जात होगा, उस का आखिरी हिस्सा आपको दिखाई पड़ेगा। निरंतर अभ्यास से, वह आने के पहले आ पको दिखने की घटना शुरू हो जायेगी। किसी ने गाली दी, वह गाली दे रहा है और आप देखने लगेंगे भीतर कि कहां है? उठता है कि नहीं? और आप हैरान हो जाएं गे, अगर उसके पहले ही निरीक्षण की क्षमता आ जाए। वह आयेगा ही नहीं, वह प हले नहीं होगा।

निरीक्षण क्रोध की मृत्यु है। पूर्ण निरीक्षण क्रोध का जन्म ही नहीं होना है, जन्म ही नहीं होगा उसका। तब उस निरीक्षण के माध्यम से जब क्रोध का जन्म नहीं होगा त ो जो आत्मचित्त की स्थिति होगी उसका नाम अक्रोध है। वह क्रोध को दबाने से नह ीं आती, क्रोध को निकालने से नहीं आती, क्रोध के विसर्जन से आती है।

प्रश्न-अस्पष्ट टेप रिकार्डिंग।

उत्तर-नहीं, उससे कोई संबंध नहीं है। माफी मांगें, नहीं मांगें, वह मैं नहीं कह रहा। वह निकलती हो तो जरूर मांग लें। नहीं निकलती हो, शिष्टाचार के लिए मांगना हो तो उसको भी नहीं कह रहा। मैं यह कह रहा हूं कि माफी क्रोध को नहीं मिटात ी, क्रोध के परिणाम को फीका करती है। मैंने आपको क्रोध में गाली दे दी और मैंने जाकर आपसे माफी मांग ली। मेरा क्रोध नहीं हटता माफी करने से, माफी मांगने से। आपको मैंने जो गाली दे दी थी क्रोध में, उसका जो बाप पर घातक प्रभाव हुआ था, वह थोड़-सा कम हो जायेगा। अगर मैंने बहुत गहरी माफी मांगी तो और कम हो जायेगा। अगर सच में आपके पैर पकड़ लिये और माफी, यानी जो-जो मैंने क्रो ध में किया था, उसके विपरीत किया। क्रोध में मैंने क्या किया, अहंकार को चोट प हुंचाई थी और माफी में क्या करूंगा? आपके अहंकार को फुसलाऊंगा और खुशामद करूंगा। माफी क्या है? खुशामद है। माफी क्या है? आप कल मुझे गाली दे गये अ ौर आज आकर मेरे पैर पकड़ लिये और कहने लगे कि क्षमा कर दें। तो कल जो गाली मुझे दे गये थे उससे मेरे अहंकार को चोट लगी थी, मेरे ईगो को चोट लगी थी। आज आकर मेरे पैर पकड़ लिये, मेरे ईगो की परितृप्ति होती है। अगर उसी म

ात्रा में मेरे ईगो को आकर आपने परितृप्त कर दिया, जिस मात्रा में चोट लगी थी तो मेरा तो परिणाम खत्म हो जायेगा। पर आपको थोड़े ही कुछ होने वाला है। अप ना जो नुकसान हुआ उसकी कोई पूर्ति नहीं होती।

और यह जो आप सोच रहे हैं कि जब क्रोध किया हमने और किसी हो गाली दी त ो अपने अहंकार का पोषण हुआ था। अब हम क्षमा मांग रहे हैं तो हमारे अहंकार का पोषण हुआ। अब हम क्षमा मांग रहे हैं तो हमारे अहंकार का विसर्जन हुआ। त ब आप क्रोधी थे, अब क्षमावान भी होकर घर लौटे। हां, तब आपने अहंकार का ज ो मजा लिया था, वह क्रोध में लिया था। तुमने मुझे गाली दी तो मैं तुम्हें दुगने वज न की गाली देता हूं। अब आप घर यह सोच कर लौटे रहे हैं कि मैं कितना क्षमाशी ल प्राणी हूं कि उसने क्षमा मांग कर-तब यह था दंभ। वह बहुत, जिसको कहें नेचुर ल था, अब बहुत सॉफिस्टिकेटेड है। वह बड़ा सहज दंभ था कि आपने गाली दी, ह मने भी गाली दी। अब जो दंभ है, वह बड़ा विकसित दंभ है। उसका पता चल जा ता है। इसका पता पाना कठिन होगा।

प्रश्न-अस्पष्ट टेप रिकार्डिंग।

उत्तर-उसको मैं बुरा नहीं कह रहा। माफी मांगी, बुरी बात नहीं है। माफी मांगी, व ह सच्ची थी। इसका लक्षण यह नहीं है कि वह हिसाब से निकली या अपने आप नि कली। इसका लक्षण यह है कि अगर वह सच्ची थी तो दुबारा क्रोध पैदा होना चाहि ए। सवाल यह है कि अगर वह सच्ची थी, अगर फिर दुबारा वैसा ही क्रोध पैदा हो ता है और फिर वैसी ही माफी मांग ली जाती है तो उसका मतलब क्या है? तब तो मतलब यह हुआ कि क्रोध भी एक मैकेनिकल रिएक्शन है और माफी भी एक मैकेनिकल रिएक्शन है। क्रोध भी निकलता है, फिर माफी भी मांग लेते हैं। फिर पश् चात्ताप भी कर लेते हैं।

हम पूरी जिंदगी इसी चक्कर में हैं। वही काम करते हैं, उसके लिए दुखी हो लेते हैं । फिर वही करते हैं, फिर दुखी हो लेते हैं। फिर वही- अगर कोई आपकी जिंदगी उठा कर देखे पूरी तो बड़ा हैरान होगा कि आप वही-वही काम, आखिर कर क्या रहे हैं? काम क्या है आपका? आप कोई चक्कर लगा रहे हैं कि कहीं चल रहे हैं? वही काम, फिर वही माफी, वही काम, फिर वही माफी। फिर पश्चात्ताप, फिर दु ख, फिर पश्चात्ताप-करीब-करीब दिन रात की तरह, हमारी जिंदगी में कुछ बातें बं धी हैं। बिलकुल रूटीन उन्हीं-उन्हीं को हम कर रहे हैं।

मेरा कहना है, इस रूटीन को तोड़िए। रूटीन को तोड़ने का मतलब यह है कि अगर क्षमा मांगने जाते हैं तो फिर इस विचार के साथ जाइये कि अब क्रोध नहीं, नहीं तो क्षमा मांगूंगा। क्षमा मांगने से फायदा क्या है। जब कल फिर क्रोध करना ही पड़े गा। इस पर नहीं तो किसी और पर करेंगे। क्षमा मांगने से क्या फायदा? पश्चात्ताप मत करिये, अगर कल फिर क्रोध करने कि स्थिति है। तो तय करिये कि पश्चात्ता प नहीं करेंगे, क्योंकि कल फिर क्रोध करना ही है। अगर यह अनुभव आप में आये कि पश्चात्ताप नहीं करेंगे, क्षमा नहीं मांगेंगे। उस आदमी से कह दीजिये कि क्षमा न

हीं मांगेंगे, क्योंकि क्षमा मांगने से कोई फायदा नहीं। कल अगर तुमने फिर हमारे स ाथ ऐसा ही किया तो फिर क्रोध करेंगे। इसलिए हम क्या क्षमा मांगें आपसे। क्षमा न हीं मांगनी है।

प्रश्न-अस्पष्ट टेप रिकार्डिंग।

उत्तर- मेरी जो बात है, वह समझ में आ जाए तो फिर मैं इन प्रश्नों को ले लूं। मैं ने कहा कि दमन नहीं, भोग नहीं, विसर्जन मार्ग है। क्रोध विसर्जित किया जा सकता है, आर्ब्जेशन से, निरीक्षण से। जितना शांत होकर आप किसी वासना का निरीक्षण करेंगे, वासना उतनी विलीन हो जायेगी। जितने अशांत होकर आप वासना का नि रीक्षण न करके वासना के प्रति मूर्च्छित होंगे और बाहर के कारणों का निरीक्षण क रेंगे, वासना उतनी प्रगाढ़ हो जायेगा। मूर्च्छा क्रोध का प्राण है और निरीक्षण क्रोध की मृत्यु है। और मूर्च्छा के रास्ते और तरकीबें हैं।

रास्ता सह है कि जब क्रोध आयेगा तो हम क्रोध का निरीक्षण नहीं करेंगे। उसका ि नरीक्षण करेंगे, जिसने हमें क्रोध दिलवा दिया। हम समझेंगे कि उस आदमी की गल ती है कि उसने हमको गाली दी तो हमें क्रोध आया, नहीं तो हमको क्यों क्रोध आ ता? अगर कोई हमको गाली न दे तो हम क्यों क्रोधित होने वाले हैं। एक तो हमक ो उस आदमी ने क्रोध करवाया। अगर सारे लोग ऐसे हों कि कोई हमको गाली न दे तो हम क्रोध नहीं करेंगे। इसलिए हमारा तो कोई सवाल नहीं है। उसने गाली क यों दी? या उसने हमको परेशान क्यों किया? या उसने अपमान क्यों किया? हम उ स वक्त क्रोध को न देख कर उसको देख रहे हैं, जिसने क्रोध दिलवाया है और इस भांति हमारी नजर और निरीक्षण उस पर लगी रहेगी।

इसी स्थिति में, जब हम निरीक्षण किसी और का कर रहे हैं, भीतर हर स्थिति में मूर्छित होंगे। वहां हमारा ध्यान लगा है, यहां ध्यानहीन हैं। इस मूर्छित कि स्थिति में क्रोध हमारे जीवन को पकड़ लेगा। जब हम क्रोध कर चुकेंगे और हमारी शक्ति व्य य हो जायेगी क्रोध में, धक्का लगेगा, तब अचानक उस पर से ध्यान हट कर जिस पर हम क्रोधित हो रहे थे, अपने पर ध्यान आयेगा। तब हम पछतायेंगे कि यह तो बड़ा बुरा हुआ। यह तो नहीं करना था, यह तो फिजूल किया, इससे क्या फायदा थ ा?

जब मूर्च्छा टूटती है, तब पश्चात्ताप होता है। लेकिन तब तक क्रोध चला गया होत ा है। निरीक्षण करने को कुछ है नहीं। तूफान जा चूका है, वहां सब चीजें टूटी-फूटी पड़ी हैं। उनका निरीक्षण करो, उनसे दुखी होओ और तय करो कि अगली बार क्र ोध नहीं करेंगे। तब फिर क्रोध आयेगा, तब फिर आप निरीक्षण करने को मौजूद नह ीं रहेंगे, बाहर भी नहीं चले जायेंगे। फिर सब खंडित होगा। फिर लौट कर देखेंगे, ि फर पश्चात्ताप होगा। क्रोध और पश्चात्ताप का यह घेरा चलेगा।

और यह जो हम कहते हैं कि क्रोध करना ही पड़ता है-स्थिति ऐसी है, समाज ऐसा है। ये सब जस्टीफिकेशंस हैं। ये हम अपनी गलतियों के लिए निरंतर खोजते हैं। सम ाज, जैसा हम चाहते हैं, वैसा कभी नहीं होगा। आप समाप्त हो जायेंगे और समाज

जैसा है वैसा ही रहेगा। अगर महावीर या बुद्ध यह सोचते कि जब समाज अच्छा हो जायेगा, तब हम शांत हो जायेंगे तो वे कभी शांत नहीं हुए होते।
इस जगत में समाज के तल पर ऐसी स्थिति कभी नहीं आयेगी कि सारे लोग इतने शांत हों कि आपको क्रोध का मौका न दें। और मेरा मानना है कि अगर ऐसी स्थिति कभी आ जाए तो बिलकुल डैड लोगों की होगी, मुर्दा लोगों की। वह ऐसा कुछ भी न करेंगे कि आपमें क्रोध पैदा हो, यह तो असंभव है। दुनिया में यह तो असंभव है कि बाहर की कोई भी स्थितियों ऐसी न हों, जो आपको क्रोध का मौका दें, क्योंकि मैंने आपसे कहा कि आप तो कलम में स्याही न चले तो क्रोधित हो जाते हैं। आप तो रास्ते में चलते-चलते यदि चप्पल टूट जाए तो क्रोधित हो जाते हैं, क्योंकि यह तो असंभव है कि चप्पलों को राजी किया जाए कि कभी रास्ते में चलते समय न टूटें। यह तो असंभव है कि कलमों को समझाया जाए कि तुम कभी जब कोई खत लिखता हो तो देख लेना कि मतलब का काम कर रहा है, कहीं उस वक्त स्याही बंद न हो। यह तो असंभव है।
आदमियों को भी समझा बुझा कर राजी कर लिया तो भी तो असंभव है, क्योंकि बहुत और दुनिया है। उसमें कुछ तय करना कठिन है। अभी यहां गरमी पड़े और यहां पंखा बंद हो जाए तो समझाना बड़ा कठिन है कि अभी इस वक्त गरमी पड़ती है, हम क्रुद्ध हो जायेंगे और हम गुस्से में आ जायेंगे। दुनिया कभी ऐसी नहीं होगी कि उसमें क्रोध को पैदा करने के कारण विलीन हो जायें। लेकिन व्यक्ति ऐसा हो हो सकता है कि उसमें क्रोध के कारणों के रहते हुए क्रोध की शक्ति विलीन हो जाए। यानी दो ही तो बातें हैं-क्रोध के कारण विलीन हो जायें तो हम अक्रोधी हो जायेंगे या फिर हममें क्रोध करने की क्षमता विलीन हो जाए तो हम अक्रोधी हो जायेंगे। एक रास्ता है कि बाहर सब ठीक हो जाए तो हम क्रोध नहीं करेंगे। यह असंभव है। यह कभी नहीं होगा, यह हो ही नहीं सकता।
अभी मैं सफर में था। मेरे कंपार्टमेंट में एक सज्जन बैठे थे। उनसे मेरी कुछ क्रोध के बाबत बात हो रही थी। जो आपने पूछा, उन्होंने भी कहा कि भाई बाहर ऐसी चीजें हैं कि हम क्या कर सकते हैं। बाहर लोग सब गड़बड़ कर देते हैं। मैंने उनसे कहा, अगर लोग ही होते दुनिया में तो भी ठीक था। समझाते-बुझाते, पर वह भी आसान काम नहीं था। तीन अरब लोग हैं जमीन पर। आज एक को समझाने की बात करता हूं तो वह कहता है कि बाकी एक को छोड़ कर तीन अरब जो लोग हैं, वह गड़बड़ कर रहे हैं। दूसरे को समझाऊंगा, वह कहेगा, दूसरे लोग गड़बड़ कर रहे हैं, जब तक वे ठीक न हो जायें, तब तक हम कैसे ठीक हो सकते हैं?
अगर ये सारे लोग यह कहते हैं कि बाकी लोग ठीक न हो जायें, तब तक हम कैसे ठीक हो सकते हैं तो ठीक होने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि एक ही क्षण में सारे लोग ठीक हो जायेंगे, यह असंभव है। फिर चीजें हैं दुनिया में। फिर क्या हुआ कि वह ट्रेन चली और एक स्टेशन के बीच आकर खड़ी हो गयी और कोई दो घण्टे खड़ी रही। उनके क्रोध का तो ठिकाना नहीं रहा। वह डिब्बे के बाहर झांक कर अंदर अ

ाये के मेरा तो मुकदमा गड़बड़ हुआ जा रहा है। मुझे तो यह है, मुझे तो वह है। अ
ौर मुझे तो इतने वक्त पर पहुंचना ही चाहिए था। फिर तो वे बहुत उत्तप्त होने ल
गे। तो मैंने उनसे कहा, आप देखिये, अभी ट्रेन खड़ी हो गयी। अब बड़ा कठिन है ि
क यह ट्रेन बिलकुल खड़ी हो ही नहीं कभी, जब कोई आदमी मुकदमे के लिए जा
रहा हो तो बड़ा कठिन है। उसको कोई पता नहीं, आपके मुकदमे से उसको कोई म
तलब नहीं।

तो अब यह जो आदमी है, यह कहता है कि अगर कभी खड़ी न हो तो हम क्रोधि
त न होंगे। यह असंभव है। यह संभव नहीं है। सवाल दुनिया का बिलकुल नहीं है,
सवाल निपट व्यक्ति का है और हम दुनिया के नाम उठा कर अपनी कमजोरी छिपा
ते हैं। हम यह कमजोरी छिपा लेते हैं, अपने को समझा लेते हैं कि हमारा थोड़े ही
कसूर है। जो आदमी अपनी गलतियों का जस्टीफिकेशन खोज लेगा, वह आदमी कभ
ी परिवर्तित नहीं होगा। जस्टीफिकेशन तो बहुत हैं।

अपनी गलतियों के लिए कोई एक्सप्लेशन, कोई जस्टीफिकेशन, कोई तर्कबद्ध रेशनल
ाइजेशन मत खोजिये। अपनी गलती को अपनी गलती समझिये। उसे दूसरे पर मत
टालिए, क्योंकि टालने से वह कभी आपका पीछा नहीं छोड़ेगी। टालना तरकीब है, ि
जसके माध्यम से हम अपने को मुक्त कर लेते हैं कि हमारी है ही नहीं, हम क्या
कर सकते हैं। हम सारे लोग और हमारी सारी बुराइयां, इसलिए जिये चली जाती
हैं कि हम कभी उनको नहीं मानते। जिसे बुराई को हम अपना न मानेंगे, उस बुराई
से हम मुक्त नहीं हो सकते हैं।

बुराई से मुक्त होने का पहला कदम सह है कि पूरी तरह उसके लिए अपने को ही
जिम्मेवार समझो कि मैं उसका जिम्मेवार हूं। पहले तो पहले ही पूरा अनुभव करो ि
क पूरी रिस्पोंसिबिलिटी मेरी है। पहली बात तो यह है और फिर दूसरी बात सह है
कि उस बुराई को गाली मत दो, उसका निरीक्षण करो और तब धीरे-धीरे अनुभव
होगा कि जिम्मेवारी ले लेने से कि मेरी बुराई, बुराई को दूर करने के प्रयत्न शुरू
होते हैं। इस दुनिया की सबसे बड़ी कठिनाई सही है कि हर आदमी, अपनी सारी बु
राइयों के लिए किसी और को जिम्मेवार समझता है। कोई आदमी अपनी बुराई के
लिए अपने को जिम्मेवार नहीं समझता। जो जिम्मेवार नहीं समझेगा, वह उसे दूर क
रने का उपाय क्यों करने लगा? सवाल ही नहीं उठता। वह जिम्मेदार नहीं है उसके
लिए।

अत: आत्मिक साधना का पहला चरण तो यह है कि समस्त बुराइयां जो तुममें हैं,
उसके लिए तुम जिम्मेवार हो, इसे अंगीकार करो। दूसरे पर बोझ मत डालो, दूसरे
का बहाना मत लो। इसके लिए बड़ा साहस चाहिए, क्योंकि हम अपनी आंखों में
अपनी एक तस्वीर बनाये हुए हैं, जो बड़ी खूबसूरत होती है। उसमें यह मानना कि
हममें भी दाग हैं और धब्बे हैं, बड़ा कठिन होता है। हम सारे लोग अपनी-अपनी ए
क तस्वीर बनाये हुए हैं, अपने मन में-एक-एक इमेजिनेशन, एक चित्र हमारे दिल
में है, जो हम अपना बनाये हुए हैं कि हम ऐसे आदमी हैं। उसमें यह मानना कि ह

म क्रोध करते हैं, उस चित्र को खंडित करता है। वह जो कल्पना है, उस चित्र को तोड़ती है। बड़ा बुरा लगता है। बड़ा बुरा लगता है। जिस आदमी को अपने जीवन में जाना है, उसे तस्वीर बिलकुल खंडित कर लेनी होगी। उसे हिम्मत करनी होगी कि मैं जैसा हूं, वैसा ही अपने को जानूं। वैसा नहीं, जैसा कि मैं होना चाहता हूं या दिखना चाहता हूं।

हम अपने भीतर कोई तीन तरह के आदमियों को लिए हुए हैं-एक तो जैसे हम हैं, जिसको हमें पता ही नहीं चलता है। एक जैसे हम दिखना चाहते हैं, जिसको हम रोज-रोज संभालते रहते हैं। और दूसरे, जैसे हम लोगों को दिखाई पड़ते हैं। तो कुल तीन परतें हमारे भीतर हैं। एक तो वह जैसा मैं हूं, जो दिखाई पड़ते हैं। उसकी भी हम फिक्र रचते हैं, जो लोगों को हम जैसे दिखाई पड़ते हैं। हम उसकी बहुत फिक्र करते हैं। पूछते रहते हैं, पता लगाते रहते हैं कि लोगों को हम कैसे दिखाई पडते हैं? वह हमको ठीक समझते हैं कि नहीं। कौन आदमी हमें देख कर हंसता है? कौन आदमी हमें देख कर क्या कहता है? वह सब हम पता रखते हैं, उस सबका हिसाब रखते हैं। उसका हम हिसाब रखते हैं और एक तस्वीर बना रखी है कि लोग हमें क्या समझते हैं। और एक हम अपनी तस्वीर बनाये रखते हैं भीतर हृदय में कि लोग हमें ऐसा समझें।

प्रश्न-अस्पष्ट टेप रिकार्डिंग।

उत्तर-हां, आप यह कहती हैं, कुछ लोग हैं जो अपनी भूलों को, अपने पापों को जा कर कन्फेस करेंगे और सोचते हैं कि उनके पाप जो हैं वह क्षमा कर दिये गये हैं। यह भी बात है, अगर सच में उन्होंने कन्फेस किया है और उनके पाप क्षमा हो गये तो वे ही पाप उनसे फिर दुबारा नहीं होने चाहिए। लेकिन जब दूसरे दिन सुबह चर्च के बाहर लौट कर वे फिर वैसे ही पाप करते हुए दिखाई पड़ते हैं तो उन्होंने उस कन्फेशन को भी एक तरकीब बना लिया। वह एक मतलब हो गया। वह पुरानी तरकीब, यहां भारत में भी थी, इस तरह कि। जो लोग सोचते हैं, गंगा-स्नान कर आये तो पाप से मुक्त हो गये। फिर गंगा से लौट आये, फिर वही पाप करेंगे। फिर यह भी सुविधा हो गयी कि जब मन होगा, गंगा में जाकर स्नान कर लेंगे।

रामकृष्ण परमहंस से किसी ने पूछा-लोग कहते हैं, गंगा में जाने से पाप मिट जाते हैं। आप कहते हैं? वे बड़े सीधे-सादे आदमी थे। वे यह भी नहीं कहना चाहते थे कि गंगा में जाने से पाप नहीं मिटते। उन्होंने कहा-पाप एकदम मिट जाते हैं। वह जो गंगा के किनारे दरख्त होते हैं, आप पानी में डूबे, वे पाप दरख्त पर बैठ जाते हैं, उसी दरख्त पर बैठ जाते हैं। आप नहा कर वापस निकले, वे फिर सवार हो जाते हैं। वह गंगा दूर कर सकती है, लेकिन गंगा में कब तक डूबे रहियेगा? निकलना ही पड़ेगा। वे फिर वापस सवार हो जायेंगे। लेकिन उसमें कोई सार नहीं है गंगा में जाने से।

टालस्टाय ने लियो टालस्टाय ने एक घटना लिखी है-एक दिन सुबह-सुबह चर्च गया एक बहुत बड़ा करोड़पति, एक बड़ा प्रख्यात आदमी, वहां कन्फेस कर रहा था सुबह

चार से पांच बजे एकांत में जाकर, आपने पापों के बाबत। अंधेरा था, मैं भी एक कोने में खड़ा होकर सुनता रहा। मैं बड़ा हैरान हुआ। मैं उसको बड़ा अच्छा आदमी समझता था। और वह कह रहा था, मैं पापी हूं, मैं दुराचारी हूं, मैं यह हूं और मैं वह हूं। वह खूब रो रहा था और कह रहा था, हे प्रभु! क्षमा करो, मेरे पाप को। ट ालस्टाय ने लिखा, मैं उसे गड़ा अच्छा समझता था। उस दिन पता चला कि अरे! य ह तो दुष्ट है। बड़ा दुराचारी है। वह आदमी निकला, उसको पता नहीं था कि यहां और भी कोई खड़ा है। उसने मुझे देखा, वह बड़ा घबरा गया। मैं उसके पीछे-पीछे चला। जब हम चौगट्टे पर पहुंचे तो मैंने कहा-भाई! सुनते हो-एक आदमी से। ये जो सज्जन हैं, इनको अब तक ठीक समझते थे, यह पक्का पापी है। अभी मैं इसका सु न कर आया सब कन्फेशन। उस आदमी ने गुस्से से टालस्टाय को देखा और कहा-दे खो, यह बात मंदिर कि थी और मुझे पता नहीं कि तुम मौजूद थे। यह बाजार में कहने की बात नहीं है। अगर तुमने किसी से कहा तो मैं अपमान का मुकदमा चला ऊंगा। मुझे पता नहीं कि तुम वहां थे और तुमसे मैंने कही भी नहीं। वह तो भगवा न और मेरे बीच की बात है।

ये जो हमारी धारणाएं हैं, इनमें कोई अर्थ नहीं है। कन्फेशन का जो मूलतः अर्थ है, वह बहुत दूसरा है। उसका अर्थ यही है जो मैंने कहा। अगर व्यक्ति अपने परिपूर्ण पाप का, अपनी परिपूर्ण बुराई का, निरीक्षण करे। उसे भूल जाए तब, तब वह प्रभु के सामने निवेदन कर देगा। निवेदन यह कि यह-यह मुझ में है-यह-यह मुझमें पूरा आब्जर्वेशन करे तो वह निवेदन कर देगा कि यह मेरे-जो प्रभु को मानते हैं, उस भां ति वे निवेदन कर देंगे कि हमारे भीतर है। निरीक्षण से निवेदन आयेगा। निरीक्षण में मौत हो जायेगी। निवेदन तो औपचारिक है। पाप की मृत्यु तो निरीक्षण में ही हो जायेगी। निवेदन औपचारिक है कि यह मुझमें दिखाई पड़ा, यह मैं प्रभु से कह दूं। वह आदमी मुक्त हो जायेगा, वह निरीक्षण से मुक्त हो रहा है, क्योंकि बिना निरीक्ष ण के तो निवेदन नहीं कर सकता। तो दुनिया में जो कौमें ईश्वर को मानती हैं, वे अपने पाप को जाकर उनके सामने निवेदन कर दें। लेकिन निवेदन के पहले निरीक्षण चाहिए, तब तो वे कहेंगे कि मुझे क्या पाप है। जो कौमें ईश्वर को नहीं मानती वे निरीक्षण से पाप से बाहर को जायेंगी। वे निवेदन से पाप से बाहर नहीं हो रहे हैं, वे निरीक्षण से पाप से बाहर हुए जा रहे हैं।

पर अकेला कन्फेशन, जैसा वह हो गया है, एक फार्मेलिटी-लोग सोचते हैं, कह दिया भगवान से, मामला खत्म हो गया। इससे कोई हल नहीं, क्योंकि कल दूसरे दिन, वही काम तो फिर कर रहा है वह आदमी। उसको कहीं फिक्र ही नहीं है इस बात की कि मैंने जो किया, वह बुरा था। वह तो डर के वश कि यह रास्ता अच्छा है, आसान है-यह तो बहुत ही आसान रास्ता है कि आप जाकर कन्फेस कर दें, मामला खत्म हुआ, फिर करें, फिर कन्फेस कर लें यह तो बहुत सस्ता हो गया। मैं ऐसा नहीं मानता, इतना सस्ता जीवन नहीं है कि गंगा में नहाने से या चर्च में जाकर कन् फेस करने से आप बाहर हो सकते हैं। इतने से कोई बाहर नहीं हो सकता।

उसके लिए तो किसी और आंतरिक साधना में लगना होगा, किसी और गहरे निरी
क्षण में लगना होगा। एक इनर आब्जर्वेशन में प्रविष्ट होना होगा। और तब उसके म
ाध्यम से अगर कन्फेशन निकलेगा तो ठीक है। अगर किसी वैसी निष्ठा हो तो वह
जाकर भगवान को निवेदन कर दे, वह बाहर हो जायेगा। लेकिन कन्फेशन अकेला ब
ाहर करता हो, तब बहुत आसान बात है। जिंदगी भर लोग यही सोचते है और पा
पियों के लिए बड़ी राहत हो जाती है कि कितना ही पाप करो जाकर भगवान से क
ह देंगे, सब बाहर हो जायेंगे।
प्रश्न अस्पष्ट टेप रेकार्डिंग।
उत्तर—यह बात जो मैं कह रहा था, समझ में आयी? मैं इसलिए कह रहा हूं कि क
ई दफे मुझे ऐसा लगता है कि जैसे कि मैं क्रोध के बाबत चर्चा कर रहा हूं, अगर
वह समझ में आ जाए तो उसका कोई परिणाम होगा। नहीं तो क्रोध की बात आप
ने एक तरफ रखी है। अब आप पूछते हैं, पुनर्जन्म होते हैं या नहीं या होता है या
नहीं।
मैं पुनर्जन्म समझा भी नहीं पाऊंगा और आप शायद पूछेंगे, यह आत्मा क्या है? हो
ता क्या है? मेरा मानना यह है कि एक भी प्रश्न की पूरी आंतरिक गहराई में उतर
 जाए तो आपके सारे प्रश्न हल हो जाएंगे—एक भी प्रश्न की पूरी गहराई मग उतर
 जाए, सारे प्रश्न हल हो जाएंगे और एक प्रश्न को छुएं और दूसरे पर कूद जाए त
ो कोई प्रश्न हल नहीं होगा। कोई भी एक प्रश्न में, परिपूर्णरूपेण उसकी पूरी जड़ त
क उतर जाए तो शायद आप हर प्रश्न की जड़ में उतर जाएंगे, क्योंकि प्रश्न शायद
 एक ही है आदमी का, उसके रूप अनेक हैं। वह बातें करता है यह और वह, यह
और वह—प्रश्न शायद एक ही है। कभी इस पर सोचिए।
यह जो क्रोध के बाबत, इतनी उत्सुकता से मैंने बात की उसका कुल कारण इतना
ही है कि वह बात हर चीज की बात, वैसी की वैसी है। कितनी-कितनी लागू है, क
योंकि हमारे सारे वेग, चाहे चिंता का हो, चाहे क्रोध का हो, चाहे किसी और काम
ना का हो, इच्छा का हो, एक से हैं। और जो आदमी क्रोध को हल करने में सफल
 हो जाएगा, वह पूरा का पूरा टेकनीक जान गया, जो किसी भी दूसरे वेग पर प्रयो
ग करने से वहां भी सफल हो जाएगा। और तब जो निर्वेग स्थिति होगी चित्त की,
उसमें आप जानिएगा, उसमें आपको अनुभव होगा इस बात का कि आप आज ही न
हीं हो इस जगत में। उस शांति स्थिति में आपको अनुभव होगा, आपका पीछे भी ह
ोना है। उस शांत स्थिति मग आपको अनुभव होगा कि आप बड़े अनंत जीवन के मा
लिक हैं। उसमें आपको अनुभव होगा, उस निर्वेग निर्द्वंद्व चित्त की स्थिति में कि मैं
शरीर नहीं हूं। और जिसको मैंने सेल्फ आब्जर्वेशन कहा, आत्म निरीक्षण कहा, अगर
 इसका प्रयोग करें तो आप दंग रह जाएंगे कि आपके भीतर, आपके पिछले जन्मों
की स्मृतियां भी मौजूद हैं, वे मेमोरीज भी मौजूद हैं। अगर आप बहुत गहराई से नि
रीक्षण करने में समर्थ हो जाए तो आप अपने पिछले जन्मों की सारी स्मृतियां को व

ापस देख सकते हैं, लेकिन उसके पहले मैं कहूं कि पुनर्जन्म होता है तो कोई अर्थ न हीं रखता।
प्रश्न—अस्पष्ट टेप रिकार्डिंग।
उत्तर—उससे क्या मतलब है? उससे क्या होगा, अगर तारीख का भी पता चल जाए, समय का भी पता चल जाए और जगह का भी पता चल जाए तो उससे आपको क्या होगा? मैं यह पूछता हूं, उससे क्या होगा? उससे तो कुछ भी नहीं होगा। आप कहेंगे, ठीक। यह सवाल जो है, मेरा जोर जो है। मैं कोई विचारक नहीं हूं, जरा भी। मेरा इससे भी कोई मतलब नहीं है कि फलां सिद्धांत कैसा सिद्धांत है। मुझे उससे कोई मतलब नहीं।
अभी एक गांव मग ठहरा था। गांव के दो वृद्ध जन मेरे पास आए और उन्होंने कहा—बीस साल से एक झंझट और झगड़ा हमारे बीच है। हम दोनों मित्र हैं। एक जैन थे, एक ब्राह्मण थे। एक झंझट हमेशा है, जो हमेशा बकवास में आ जाती है, विवाद हो जाता है। आपकी बातें कुछ अच्छी लगीं तो हम पूछने आए हैं कि आप शायद हमारा हल कर दें। इस बुढ़ापे में हल हो जाए तो अच्छा है। हम दोनों पुराने मित्र हैं, लेकिन वह एक बात है। मैंने पूछा, वह कौन सी बात है, जो बीस साल से आपको परेशान किए हुए हैं? उन्होंने कहा कि यह सवाल है कि जगत को भगवान ने बनाया या कि नहीं बनाया। यह ब्रह्मस्य जो हैं, ये कहते हैं कि बनाया भगवान ने और हम कहते हैं, यह भगवान ने बनाया नहीं। अनादि है। बस, इस मुद्दे पर हमारे झगड़े हैं और कभी झगड़े नहीं होते, बस, ये बकवासें होती हैं। फिर मैंने उनसे पूछा—अगर यह तय भी कर दें बिलकुल या कोई भी तय कर दे बिलकुल कि भगवान ने नहीं बनाया तो आप क्या करिएगा? और करना क्या है? बस, तय हो जाएगा।
थोड़ी देर हम यह सोचें कि जिन-जिन प्रश्नों का हमारे जीवन के ट्रांफार्मेशन से कोई वास्ता न हो, वह-वह प्रश्न, जिसको हम कहें, वह कल बजूभाई कहते थे प्रास्टीटशन आफ माइंड—तो उसमें कोई मतलब नहीं, वह हम दिमाग के साथ व्यर्थ नासमझी का काम कर रहे हैं। कोई फायदा नहीं, कोई मतलब नहीं है। मैं कोई विचारक नहीं हूं। मेरी दृष्टि इससे बिलकुल संबंधित नहीं कि क्या है और क्या नहीं है। मेरी दृष्टि कल इस बात से संबंधित है कि आप जो हो, इस क्षण, वह क्षण आपका दुख से भरा है। अगर वह दुख से भरा है; तब तो कोई दिक्कत ही नहीं है। फिर आपको कोई प्रश्न ही नहीं है।
बुद्ध के जीवन में एक घटना घटी। एक व्यक्ति मौलुंकपुत्त ने जाकर उनसे ग्यारह प्रश्न पूछे। उन प्रश्नों में सारे प्रश्न आ जाते हैं। यह प्रश्न भी आ जाता है उसमें कि आत्मा जगत में क्यों आयी? यह जगत किसने बनाया? सारे प्रश्न आ जाते हैं। करीब-करीब वह ग्यारह प्रश्नों के आस-पास सारी फिलासफी घूमती है, सारे जगत की। बुद्ध ने मौलुंकपुत्त से कहा कि तुम उत्तर चाहते हो? सच में चाहते हो? वह बोला, उत्तर चाहता हूं। तब तो मैं पूछता हूं, मैं तो अनेक वर्षों से पूछता हूं। तो बुद्ध ने पूछा, जिन-जिन से तुमने पूछा, उन-उन ने उत्तर दिए थे? उसने कहा—सबने उत्तर

दिए थे। तो बुद्ध ने कहा, तुम्हें उत्तर से उत्तर मिला क्यों नहीं? जब अनेक से पूछ चुके, उन सबने उत्तर दिए, तुम्हें उत्तर क्यों नहीं मिला? क्या वे उत्तर गलत थे। अगर वे उत्तर गलत थे तो तुम क्या सही उत्तर का पता है? तभी तुम उनको गलत समझ सकते हो। बुद्ध ने बड़ी अदभुत बातें उससे कहीं। उन्होंने कहा— इतने लोगों से पूछा, उत्तर उन्होंने दिए तो वे उत्तर तुम्हें तृप्त क्यों नहीं कर पाए? क्या वे उत्तर जगत थे?

अगर वे गलत थे तो अर्थ हुआ कि तुम्हें सही का पहले से पता है। अगर सही का पहले से पता है तो पूछते क्यों हो? अगर सही का पता नहीं है तो फिर उनको तुमने गलत क्यों माना? तो बुद्ध ने कहा, मैं भी तुम्हें उत्तर दे दूंगा, फिर भी तुम किसी से पूछोगे। मैं तुम्हें उत्तर दे दूं, फिर तुम किसी से पूछोगे। बुद्ध ने कहा, मैं तुम्हें उत्तर नहीं देता। उत्तर जानने की विधि देता हूं। बुद्ध ने एक अजीब बात कही। मैं तुम्हें उत्तर नहीं देता कि आत्मा क्या है और कब आयी अथवा नहीं आयी और पीछे जन्म था कि नहीं और आगे जन्म होगा कि नहीं और आगे वैकुंठ में जाएंगे कि कहां जाएंगे, मैं कुछ नहीं देता उत्तर। मैं तुम्हें उत्तर नहीं देता, क्योंकि उत्तर जिन्होंने दिए, तुमने उनके उत्तरों के साथ जो व्यवहार किया, वही तुम मेरे उत्तर के साथ करोगे। मैं तुम्हें उत्तर नहीं देता।

तुम छह महीने रुक जाओ। मैं जो करने को कहता हूं, करो और मुझसे पूछना इस बीच में। छह महीने के बाद, मैं ही तुमसे पूछूंगा कि अब पूछना हो तो पूछ लो। तो बुद्ध का एक शिष्य था—आनंद उसने मौलुंकपुत्त से कहा, इनकी बात में मत आना। मैं कोई दस बारह वर्ष से इनके करीब हूं और यह धोखा इन्होंने कई लोगों को दिया। जो भी आकर इनसे प्रश्न पूछता है, उससे ये कहते हैं, छह महीने रुको, साल भर रुको तो तुम्हें उत्तर दूंगा। फिर न मालूम उन लोगों को क्या हो जाता है कि वे पूछते नहीं फिर।

तो बुद्ध के पास जो संघ बैठता था, उसमें ऐसे हजारों भिक्षु थे, जिन्होंने कभी नहीं पूछा, जो सामने बैठे रहते थे। एक दफा प्रसेनजित ने बुद्ध से पूछा कि सामने के लोग क्या हैं, समझ में ही हनीं आता। ये हमेशा बैठे रहता हैं। न कभी कुछ पूछते, न कभी सिर हिलाते, न कुछ कहते, चुपचाप बैठे सुनते रहते हैं। ऐसा मालूम होता है कि पता नहीं वे सुनते हैं कि नहीं सुनते। न कुछ पूछते, न कुछ विवाद करते हैं। न कभी कोई उत्तर, बस, बैठे रहते हैं, सांझ को चले आते हैं।

बुद्ध ने कहा, ये बड़े पहुंचे हुए लोग हैं। ये बामुश्किल आगे आ पाते हैं। ये जब तक पूछते रहते हैं, पीछे रहते हैं। फिर जैसे-जैसे इनका पूछना खत्म होता चला जाता है, ये आगे आ जाते हैं। ये बड़े छंटे हुए लोग हैं। ये इसलिए नहीं पूछते कि इनका प्रश्न है। अगर नहीं है कोई तो प्रश्न गिर गया। तो मौलुंकपुत्त से आनंद ने कहा कि रुके छह महीने तो आशा कम है कि पूछो। फिर वह छह महीने रुका। बुद्ध ने जो उसे करने को कहा उसने किया। छह महीने बाद बुद्ध ने बड़े संघ में, भिक्षुओं के बीच कहा, मौलुंकपुत्त! तुम प्रश्न लेकर आए थे, पूछ लो। वह आदमी खड़ा हो गया

और बोला, मेरे कोई प्रश्न नहीं हैं। छह महीने में तो वह हवा हो गए। बुद्ध ने कहा , कोई उत्तर मुझसे पूछना हो तो पूछ लो। फिर उसने कहा, कोई उत्तर आपसे नहीं पूछना है, क्योंकि यह तय हो गया, उत्तर अपना आ गया।
तो जीवन सत्य के संबंध में, उत्तर किसी से नहीं मिलेंगे। उत्तर तो भीतर मौजूद हैं । उस भीतर तक पहुंचने की विधि मिल सकती है। मैं नहीं कहता कि क्रोध क्या है । मैं नहीं कहता, अक्रोध क्या है। मैं इतना ही कहता हूं, जो भी हो क्रोध, उसका ि नरीक्षण करो। निरीक्षण विधि है। उससे क्रोध का पता चलेगा, उसके ही माध्यम से अक्रोध का पता चलेगा। निरीक्षण विधि है। अपने भीतर विचार का निरीक्षण करो। उससे विचार का पता चलेगा। उसी से धीरे-धीरे निर्विचार का पता चलेगा। निरीक्ष ण विधी है, उसका निरीक्षण करो।
धीरे-धीरे शरीर का पता चलेगा। अभी तो शरीर का भी आपको पता कहा है? अभ ी आपने शरीर को भी ऐसे देखा है, जैसे अपने बाहर देख रहे हो। अभी आप शरीर के इस ऊपरी तल से ही परिचित हैं, जो ऊपर से दिखाई पड़ता है। अभी आपने शरीर को ऐसा थोड़े देखा जैसे शरीर के भीतर बैठ कर शरीर को देख रहे हों। अभ ी तो ऐसा देखा, जैसे बाहर से खड़े होकर देख रहे हों। अभी अपने शरीर से भी आ पका जो परिचय है, पह ऐसी ही है, जैसे एक आदमी मकान के बाहर खड़ा होकर मकान को देख रहा हो और एक आदमी मकान के भीतर बैठ कर मकान को देख रहा हो। अभी आपने भीतर बैठ कर शरीर को भी हनीं देखा अगर निरीक्षण में गह रे उतरेंगे तो भीतर बैठकर शरीर को देखेंगे। तब आपको पता चलेगा, यह ज्योति का पिंड भीतर है और यह बाहर खोल घिरी हुए है। क्रोध दिखेगा। अभी मन भी न हीं देखा। और भीतर उतरेंगे तब आपको मन में दिखाई पड़ेगा कि ज्योति भीतर औ र चारों तरफ विचार की मक्खियां घूम रही हैं। उसके पार शरीर के चमड़ी की हड्ड ी की खोल चढ़ी हुई है। वह निरीक्षण, उसको धीरे-धीरे भीतर ले जाएगा, आंतरिक में ले जाएगा और तब केवल शुद्ध उसका अनुभव होगा जो निरीक्षण करता रहा, उसका अनुभव होगा और उसके अनुभव से सारे प्रश्न हल हो जाएंगे।
मैं आपको प्रश्न के उत्तर देता हूं तो मुझे हमेशा यह खयाल बना रहता है कि कहीं कोई बौद्धिक ही बात न रह जाए, कहीं ऐसा लगे कि मैं कुछ अच्छे से उत्तर दे र हा हूं। उनका कोई मतलब नहीं है। मेरे अच्छे बुरे उत्तर का कोई मतलब नहीं है। मेरी सारी चेष्टा इस बात की है, इसकी नहीं कि आपका थोड़ा सा एकेडेमिक ज्ञान बढ़ जाए कि आपको कुछ और अच्छी-अच्छी बातों पता चल जाए। इससे मुझे क्या मतलब है? मेरी पूरी चेष्टा यह है कि आपको उस बात की दिशा खुल जाए, जहां आप शांत हो सकें और सत्य को जान सकें। मैं नहीं कहता कुछ कि कब आत्मा आ यी या नहीं आयी। मैं तो कुछ नहीं कहता। इतना मैं आपसे कहता हूं कि अभी आ प में कुछ है जो आत्मा है और अभी आपको अपने भीतर तक उतरने का रास्ता है । उसको व्यर्थ प्रश्न में खोकर समय और जीवन को व्यय न करें।

पिछली बार बात की थी—एक भिक्षु ने जाकर संन्यासी के पास—वह घटना चीन में घटी। उस संन्यासी के पास गया। वहां यह रिवाज था कि संन्यासी के तीन चक्कर लगाओ और उसको प्रणाम करो, फिर प्रश्न पूछो। वह सीधा जाकर पहुंचा। उसने उसके हाथ पकड़े और उसने उससे पूछा। वह संन्यासी बोला, तुमको इतना भी पता नहीं, रिवाज का भी पता नहीं कि पहले विधिवत प्रदक्षिणा करो, फिर बैठो, नमस्कार करो, फिर जगह पर बैठो। फिर तुम ऐसे हाथ पकड़ कर पूछते हो, जैसे कि झगडा हो गया मेरा तुमसे।

उसने जाकर हिला दिया और पूछा। वह आदमी बोला, मैं तीन नहीं, तीन हजार चक्कर लगा दूं, लेकिन जीवन का भरोसा नहीं। अगर मैं तीन ही चक्कर लगाने में समाप्त हो जाऊं तो जिम्मा तुम्हारा। उसने कहा, मैं जब तीन ही चक्कर लगाने में गिर जाऊं और मर जाऊं, किसी क्षण तो मरूंगा ही, यह तीन ही चक्कर में गिर जाऊं और मर जाऊं और नमस्कार करने में मेरा प्राण निकल जाए, तो फिर जिम्मा किसका? फुरसत मुझे नहीं है और उसने बड़ी अजीब बात की।

तो उसने पूछा कि तुम पूछना क्या चाहते हो और उसने कहा, यह भी मैं तय नहीं कर पाता कि क्या पूछूं, मैं तुमसे यही पूछने आया हूं कि क्या पूछना चाहिए। बड़ी अजीब और बड़ी प्रीतिकर बात लगी। उसने कहा, मुझे यह भी पक्का नहीं, गलत-गलत पूछूंगा, क्योंकि मैं तो गलत आदमी हूं। मेरा तो कोई हिसाब-किताब है नहीं। मैं इतना ही पूछने आया हूं कि क्या पूछना चाहिए, यह मुझे बता दें। फुरसत तो मुझे है नहीं। नहीं तो मैं तीन हजार चक्कर लगा दूं, मुझे कोई दिक्कत नहीं है।

यह जो आदमी है, प्रश्न नहीं है इसके पास, प्यास है और हमारे पास अक्सर प्रश्न हैं, प्यास नहीं है। प्यास को घनीभूत करो और प्रश्नों के विस्तार में मत जाओ, प्यास की गहराई में जाओ। प्रश्न गहरे नहीं होते, प्रश्न विस्तृत होते हैं। प्यास विस्तृत नहीं होती, प्यास गहरी होती है। प्रश्नों का एक्सटेंशन होता है, प्यास इंटेसिव होती है। एक प्रश्न, दो प्रश्न, पचास प्रश्न, लाख प्रश्न हो सकते हैं। प्यास लाख नहीं होती। प्यास एक ही होती है। और गहरी हो जाएगी और गहरी हो जाएगी और गहरी हो जाएगी। प्रश्न लंबे होते चले जाएंगे, बहुत हो जाएंगे। प्यास एक ही होती है, गहरी होती चली जाती है। एक सीमा पर प्यास इतनी घनी हो जाती है कि तब तुम प्रश्न नहीं चाहते, तब तुम कुछ जानना नहीं चाहते। कोई चीज आपको तृप्त नहीं कर सकती कि कोई बता दे, ऐसा है, वैसा है।

तो मैंने यह अनुभव किया और पूरे मुल्क में अनेक लोगों से मिल कर मुझे यह अनुभव आया कि सारे प्रश्न करीब-करीब ऐसे हैं, जैसे स्कूलों में होते हैं। जैसे परीक्षा के प्रश्न होते हैं—एकेडेमिक, जिनका जीवन से कोई संबंध नहीं। फिजूल, जिनसे कोई मतलब नहीं। उनका कोई मूल्य नहीं। मैं उनके उत्तर में उत्सुक नहीं हूं। पिछले जन्म हों न हों। इससे मुझे कोई मतलब नहीं है।

मतलब मुझे इससे है कि अभी तुममें एक जन्म है, एक जीवन है हाथ में, अभी एक क्षमता है। इस क्षमता के बीच तुम्हें बोध है कि दुख बड़ा है, अशांति है, पीड़ा है,

परेशानी है। इसको दूर करने के उपाय की फिकर करो। उसको ही पूछो। जगह-जगह से, तरफ-तरफ से उसको ही खोदो। उसी से सारे का सारा चैतन्य, सारा केंद्रीकरण उसी पर लगा दो और अपने भीतर, सबसे बड़ा जो तुम्हें कारण दिखाई पड़ता हो दुख का, उसका निरीक्षण करने लग जाओ।
किसी को क्रोध मालूम होगा, किसी को लोभ मालूम होगा। वह जो खास केरेक्टरिस्टक हो तुम्हारे दुख की, जिसके केंद्र पर तुम्हारी सारी पीड़ा घूम रही है, जिसके केंद्र की वजह से तुम अशांत हो, उसके निरीक्षण में लग जाओ। उसी पर पूरे केंद्रित होकर, काम करने में लग जाओ। तो उसी काम से तुम्हें उत्तर आने शुरू होंगे और उनके भी उत्तर आ जाएंगे, जिनका उस काम करने से सीधा संबंध नहीं मालूम होता। अगर उत्तर चाहते हैं तो प्रश्नों की फिकर छोड़ो और कुछ साधना के क्रम में थोड़ा सा अपने को संयुक्त कर लो। और अगर उतर नहीं चाहते हैं तो फिर बहुत ग्रंथ हैं, और बहुत उत्तर देने वाले हैं। उनसे उत्तर इकट्ठे करो। तुम एक पंडित होकर मर जाओगे, जो बहुत से उत्तर जानता था, लेकिन जिसके पास उत्तर नहीं था। जो बहुत उधार की बातें जानता था, लेकिन जिसके पास अपना कुछ भी नहीं था। तथाकथित ज्ञानी और पंडित से दरिद्र आदमी दूसरा नहीं होता। ये जो सो काल्स विचारक समझे जाते हैं, इनसे ज्यादा दयनीय और दरिद्र आदमी दूसरा नहीं होता। इनका कोई उत्तर अपना नहीं है। यह सब सुना हुआ, सब सड़ा हुआ दोहरा रहे हैं। ये सब मुर्दा हैं। फिर कोई अर्थ नहीं।
प्रश्न—अस्पष्ट टेप रिकार्डिंग।
उत्तर—मैं यह कह रहा था कि हम अपने भीतर एक चित्र बनाए हुए हैं अपना ही, बड़ा भव्य एक चित्र बनाए हुए हैं अपना ही। वह भव्य चित्र हमारा, हमें जीवनभर धोखा देता है। उसकी वजह से, हम अपने में कोई बुराई कभी स्वीकार नहीं कर पाते, कोई गलती नहीं देख पाते, कोई दाग नहीं देख पाते। तो अपनी कल्पनाओं से, अपने भव्य चित्र को खंडित कर दें, उसे उठाकर फेंक दें। क्या मुझे होना चाहिए, इसकी फिकर छोड़ दें। क्या मैं हूं, इसको जानें—हम सब एक आदर्श से पीड़ित हैं और इसलिए एक अभिनय में पड़े हुए हैं। हम सब एक आदर्श कल्पना अपनी बनाए हुए हैं कि मैं कैसा आदमी हूं, मैं वैसा आदमी हूं। वही कल्पना हमें धोखा दिए रहती है, क्योंकि उस कल्पना के कारण जब भी हममें कोई बुराई होती रहती है, क्योंकि उस कल्पना के कारण जब भी हममें कोई बुराई होती है हम मान नहीं सकते कि हममें है। हम समझते हैं, किसी और की वजह से हम में है।
अभी मैं एक प्रोफेसर से बात कर रहा था। वह बोल, कुछ क्रोध ऐसे होते हैं जो कि क्रोध हैं ही नहीं। वह बोल, बिलकुल ही ठीक क्रोध? मैंने कहा, क्रोध तो कोई ठीक नहीं हो सकता। इस शब्द से झूठा शब्द नहीं हो सकता। कोई क्रोध ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि कोई अंधेरा कहे कि कुछ अंधेरे ऐसे होते हैं जो प्रकाश होते हैं, नासमझी की बात हो गयी। कुछ अंधे ऐसे होते हैं जिनको दीखता है, बिलकुल फिजूल

की बात हो गयी। यह तो कोई मतलब की बात नहीं है। यह तो विरोधी शब्द हैं।

प्रश्न—असप्ष्ट टेप रेकार्डिंग।
उत्तर—हां, सभी क्रोध करने को, आप कोई न कोई बेसिस मानते हैं, यह सच्चा है। और सच्चा मानते हैं इसलिए कि क्रोध करने की तरकीब खोज रहे हैं। तरकीब जो हमारे दिमाग की है वह यह है कि क्रोध हमें करना है और अपनी कल्पना में जो ह मने चित्र बना रखा है भव्य और दिव्य, उसको भी कायम रखना है तो फिर हम व ह जो बेसिस है उसको कहेंगे कि वह बिलकुल ठीक है और हमारे योग्य है कि हम क्रोध करें इस वक्त। हमारी दिव्यता क्रोध करने से खंडित न हो, इसलिए क्रोध कर ने के कारण को हम ठीक से यह दावा करेंगे। यहीं तो भूलें छिपी हैं।
तो मेरा कहना है कि पहले अपनी भीतर, जो एक प्रतिमा बना रखी है, वह खंडित कर दें। उसकी फिकर छोड़ें, उसको जानने लगें, जो कि आप असलियत में हैं और तब आप बड़े अजीब मालूम होंगे। हो सकता है आप सोचते हों कि मेरे जैसा अच्छ ा पति नहीं है। जरा गौर से अपने भीतर देखिएगा तो आप पाइएगा, आप कौन से पति हैं, काहे के अच्छे हैं? शायद आप सोचते हों, मुझसे बेहतर कोई पिता नहीं है। जरा गौर से देखिए, आप में पिता जैसा क्या है और कहां पागलपन में पड़े हैं? य ह जो भ्रम हम किए हुए हैं कि हम ऐसे हैं, हम वैसे हैं। थोड़ा उठाकर पर्दे को देखि ए जो आप हैं तो आप पाएंगे, शायद वहां पिता जैसा कुछ भी नहीं है, पति जैसा व हां कुछ भी नहीं और घबराहट इसलिए होगी कि आपको चित्र टूटना शुरू हो जाएग ा।
लेकिन साधक को इससे गुजरना होगा। यही तपश्चर्या है। यही कष्ट है, जो सहना प. डेगा उसे और अपनी सारी दिव्य प्रतिमा को खंडित करके वह जैसा नग्न, अनैतिक जैसा है, उसको जानना होगा। जब वह अपने को जानेगा, जैसा वह है तो उसमें फ र्क होने शुरू हो जाएंगे, क्योंकि जो बुराई उसमें दिखाई पड़ेगी, अब उसको सहना क ठिन हो जाएगा। दिखती नहीं थी इसलिए सहता था, दिखेगी तो सहना हो जाएगा। यानी किसी बुराई को देखने लगना उससे मुक्त होने का रास्ता बन जाता है। हम अ पने को हमेशा उलटे में लगाए हुए हैं। हम हमेशा यह सिद्ध करने में लगे हुए हैं कि हमारी जो आदर्श कल्पना है, अपने बाबत बड़ी सच है। चौबीस घंटे हम उसी को सिद्ध करने में सब तरफ से लगे हुए हैं। अगर कोई हमारी निंदा करे तो हम उसका विरोध करेंगे। अगर कोई हमें गोली दे तो हम उसका प्रतिवाद करेंगे। अगर कोई हमारे विरोध में कुछ कहे तो हम उसका प्रतिरोध करेंगे, ताकि हमारी प्रतिमा खंडि त न हो।
एक साधु था, वह एक गांव के बाहर ठहरा हुआ था। युवा था और सुंदर था। तो गांव में एक स्त्री, एक युवती गर्भवती हो गयी और उससे लोगों ने पूछा, दबाव डा ला तो उसने कहा—यह साधु का बच्चा है। बच्चा उसे हुआ, सारा गांव कुपित हो ग या। उन्होंने जाकर बच्चा उस साध के ऊपर पटक दिया। उसने पूछा—क्या बात है?

उन लोगों ने कहा—यह तुम्हारा बच्चा है। वह बोला—इज इट सो? ऐसा है क्या? व
ह बच्चा रोने लगता तो उसे वह संभालने में लग गया। लोगों ने गाली बकी अपमा
न किया और चले गए।
वह दोपहर को भीख मांगने निकला उस बच्चे को लेकर। लेकिन उसको कौन भीख
देता। सारे गांव में अफवाह फैली थी और उस पर हंसी मजाक और व्यंग्य कसा जा
रहा था। जहां से निकले लोग भीड़ बना कर खड़े है और देख रहे हैं, हंसी उड़ा र
हे हैं कि यह साधु है और बच्चे को भी लिए हुए है। अब उसको भूख भी लगी है।
बच्चे के लिए दूध भी चाहिए और बच्चा रो रहा है, वह बेचारा सारे गांव में मांग
रहा है। कौर उसको भिक्षा देगा? कोई भिक्षा उसे नहीं मिली।
वह उस घर के सामने गया जिस घर की लड़की का वह बच्चा था। उसने वहां भी
आवाज दी। उसने कहा, मुझे भीख न दो, इस बच्चे को भीख दे दो। इसको दुख मि
ल जाए तो बहुत। जिस लड़की का वह बच्चा था, उसके लिए सहना कठिन हो गया
। वह इनटालरेबल हो गया। उसने अपने पिता से कहा, मुझे क्षमा करें, मैंने झूठ क
ह दिया। साधु का तो कोई संबंध नहीं है इससे। यह मैंने असली बाप को बचाने के
लिए साधु का नाम ले लिया। मैंने सोचा था कि मामला खत्म हो जाएगा साधु का।
आप भगावगा कर वापस लौट आओगे। यह जो हालत हो रही है, इसकी मैंने कल्
पना नहीं की थी।
पिता बोला, अरे! उसने कहा भी नहीं कि यह मेरा बच्चा नहीं है। उस नासमझ को
कहना तो चाहिए था। वे सारे लोग नीचे गए, उसके हाथ पैर जोड़े। वह बोला, क
या बात है? उससे जब वे बच्चा छीनने लगे तो बोला, क्या बात है? तो उन्होंने क
हा, यह बच्चा तुम्हारा नहीं है। वह बोला, इज इट सो? ऐसा मामला है, क्या बच्च
ा मेरा नहीं है? जब सांझ को लोगों ने उससे पूछा कि तुम कैसे पागल हो? तुमने
सुबह ही क्यों नहीं कह दिया तो वह बोला, जब इतने लोग कहते हैं तो ठीक होगा।

असल में अपनी कोई उसकी कल्पना ही नहीं है, कोई प्रतिमा नहीं है जिसको बचान
ा है। यह कोई प्रतिमा नहीं है कि मैं बाल ब्रह्मचारी हूं और यह मेरा कैसे हो सकत
ा है? यह कोई प्रतिमा नहीं है अपनी। तुम चाहते हो तो यही ठीक होगा। तुम गल
ती पर होगे तो तुम्हीं अपनी गलती ठीक कर लेना। मैं कहां जिम्मेवार हूं उसको ठी
क करने का। अगर तुम मुझे व्यभिचारी और दुराचारी समझोगे तो यह भी ठीक है,
क्योंकि मुझे इसकी भी रक्षा नहीं करनी है। जो आदमी इस भांति अपने ही चित्रों
और प्रतिमाओं को छोड़ दे, उसको मैं साधु कहता हूं,। आम तौर से जो हम साधु
देखते हैं, वह अपनी प्रतिमा रखता है। वह कुछ है, इसकी पूरी फिकर रखता है। व
ह यह सिद्ध करने की चौबीस घंटे कोशिश में है कि वह वह कुछ है। जिसने यह को
शिश छोड़ दी सिद्ध करने की कि मैं कुछ हूं और जैसा निपट है, वैसा होने को राज
ी हो गया तो उसको मैं साधु कहता हूं।

उस दिशा से जो चलेगा वह आत्मनिरीक्षण में गतिमान होगा। वह एक दिन जरूर उसको जान लेगा। झूठा दंभ और मिथ्या व्यक्तित्व अपने में खड़ा करने की बात नह ीं। इससे बड़ी दिक्कत होगी। इससे मैं देखता हूं कि हमारे प्रश्न कहीं कुछ नहीं हो प ाते। अभी मैं ऐसा ही देखता हूं कि आप पूछना कुछ चाहते हैं और पूछते कुछ हैं, क योंकि जो पूछना चाहते हैं, कहीं उससे ऐसा पता न चल जाए कि आप में यह माम ला भी है। मैं बड़ा हैरान हूं

मैं कलकत्ता में एक मीटिंग में बोलता था। एक सज्जन ने ब्रह्मचर्य पर एक किताब ि लखी है। बड़ी किताब लिखी है, बड़ी प्रशंसित हुई। उन्होंने मुझे किताब भेंट की। लेि कन ब्रह्मचर्य पर मैंने कहा, जैसी मेरी अपनी धारणा थी। उनको कुछ प्रश्न पूछने थे, लेकिन बड़ी मुसीबत में पड़ गए। वे खड़े होकर बोले, मेरे एक मित्र हैं, वह ब्रह्मच र्य साधना चाहते हैं। लेकिन उनसे सधता नहीं। तो क्या करें?

मैंने उनसे पूछा, वह मित्र हैं आपके कि आप ही हैं। पहले मैं यह समझ लूं। वह बहु त घबड़ा गए। बोल, नहीं, मेरे एक मित्र हैं। मैंने कहा, मित्र की फिकर छोड़िए, उ न मित्र को लाइए। रास्ता जरूर है, लेकिन उन मित्र को ले आइए, क्योंकि मैं आप को समझाऊं, आप उनको समझाएं तो बड़ा गड़बड़ हो जाएगा। आप मित्र को ले आ इए, मैं उनको समझा दूंगा।

वह बड़े बेचैन हुए, जब मैं चला आया। उन्होंने मुझे चिट्ठी लिखी कि क्षमा करें, तक लीफ मेरी है। लेकिन मैं साहस नहीं कर सकता पूछने का। तो मैंने उनको लिखा कि साहस आप कर सकते थे, अगर वह ब्रह्मचर्य की आपने किताब न लिखी होती। व ह दिक्कत हो गयी न, वह जो एक किताब लिखी है, एक प्रतिमा हो गयी है कि मैं जो कि इतना जानने वाला ब्रह्मचर्य का हूं तो मैं पूछूं किसी से तो कोई कहेगा अरे ! आपको साधने की, आपको खुद भी दिक्कत है?

यह जो तकलीफ है, मैं साधुओं से मिलता हूं, साधु मुझसे सबके सामने बात नहीं क रना चाहते। भीड़ में हों तो मुझसे मिलना नहीं चाहते। चाहते हैं एकांत में, अलग में उनसे मिलूं, क्योंकि उनकी तकलीफें वही हैं, जो कि सबके सामने नहीं कह सक ते हैं। अकेले में वह मुझसे यही पूछते हैं कि ब्रह्मचर्य कैसे सधे? चित्त अशांत रहता है, चित्त में क्रोध आता है तो क्या करें? यह अगर सबके सामने मुझसे पूछेंगे तो वह जो प्रतिमा अपनी उन्होंने खड़ी कर रखी है, चारों तरफ कि वे बड़े शांत चित्त हैं, वे बड़े मुश्किल में पड़ जाएंगे, क्योंकि वे पूछते हैं कि अशांति कैसे मिटे तो लोग समझेंगे, अभी शांत चित्त नहीं हुए।

तो हम एक असली आदमी अगर सामने न रख सकें तो हम उस असली आदमी में फर्क कैसे कर सकेंगे? हम एक झूठे आदमी को सामने रखे हुए हैं और असली आद मी को पाना चाहते हैं। आत्मा को पाना चाहते हैं और एक नकल, एक अभिनय, एक एक्टिंग चारों तरफ खड़ी किए हुए हैं तो वह नहीं हो सकेगा। मेरा मानना है ि क इसमें घबराने की कोई जरूरत नहीं है। जिंदगी के साधे प्रश्न पूछना बंद हो गए हैं। लोग—कोई पूछेगा आत्मा है, परमात्मा है? इनसे कोई मतलब नहीं है। आपको

आपके मतलब के प्रश्न कुछ और है जो आपकी जिंदगी को पीड़ित और परेशान कि
ए हुए हैं। जिनकी वजह से आप दिक्कत में पड़े हुए हैं, जिनका परिवर्तन आपकी स
मझ में आ जाए तो क्रांति हो जाए।
लेकिन वह कोई नहीं पूछेगा। उनको कैसे पूछूं, क्योंकि वह हमको खोल देंगे और ह
मारे बाबत जाहिर कर देंगे। जिंदगी के असली प्रश्न हम पूछते ही नहीं और नकली
प्रश्न पूछे चले जाते हैं। मेरा जोर इसी बात पर है कि जिंदगी के असली प्रश्न पकड़ें
। मुसीबत क्या है? मेरी दिक्कत क्या है? मैं कहां उलझा हूं? मैं कहां परेशान हूं?
मेरा दुख कहां है? उसको केंद्रित करें, उसको पकड़े। उसके बाबत सोचें। उसके बात
 विधि को समझें। उस पर प्रयोग में लग जाए। और बड़े मजे की बात यह है कि इ
स भांति जो प्रयोग में लगेगा, वह हो सकता है, एकदम से ऐसा भी न दिखे कि धा
र्मिक है, क्योंकि न आत्मा की बात करता है, न परमात्मा की बात करता है, न पु
नर्जन्म की बात करता है। लेकिन बड़े रहस्य की बात यह है कि इस भांति जो जिंद
गी को पकड़कर काम में लग जाएगा, वह एक दिन उस जगह पहुंच जाएगा, जहां
आत्मा और परमात्मा सब जान लिए जाते हैं।
अभी कल रात जो मैंने कहा, वह मैंने यही कहा कि महावीर ने किसी से जाकर न
हीं पूछा कि आत्मा है या नहीं, पुनर्जन्म है या नहीं। वह वहां बैठकर जंगल में क्या
यह सोचते होंगे कि आत्मा है या नहीं? कभी यह सोचा आपने, क्या सोचते होंगे?
यह बैठकर सोचते होंगे, आत्मा है या नहीं, पुनर्जन्म है या नहीं? नहीं, कुछ नहीं स
ोचते। क्रोध पर काम कर रहे हैं, सेक्स पर काम कर रहे हैं। काम इन पर चल रहा
 है। काम आत्मा वात्मा पर थोड़े ही चलता है। वह बारह वर्ष की तपश्चर्या है। का
म किस पर कर रहे हैं? कोई आत्मा पर काम कर रहे हैं या कोई पुनर्जन्म का पत
ा लगा रहे हैं? कि निगोद का पता लगा रहे हैं? कि अनादि जगत कब बना इसका
 पता लगा रहे हैं? वे कुछ नहीं पता लगा रहे हैं। काम कर रहे हैं क्रोध पर, काम
 कर रहे हैं सैक्स पर, काम कर रहे है लोभ पर। वहां काम कर रहे हैं। उसी काम
 के माध्यम से, एक दिन स्थिति आती है कि ये सब विसर्जित हो जाते हैं। यह सब
 जब विसर्जित हो जाते हैं तो उसका अनुभव होता है जो आत्मा है। बातचीत आत
मा ही है, काम आत्मा पर नहीं करना है कुछ काम किसी और ही चीज पर करना
 है, पर आत्मा के बाबत पूछे चले जाएंगे। इसका कोई मतलब नहीं है।
प्रेम की सुगंध
मेरे प्रिय आत्मन,
आज की संध्या, आपके बीच उपस्थित होकर मैं, बहुत आनंदित हूं। एक छोटी सी
कहानी से आज की चर्चा को मैं प्रारंभ करूंगा।
बहुत वर्ष हुए एक साधु मरण शैय्या पर था। उसकी मृत्यु निकट थी और उससे प्रेम
 करने वाले लोग उसके पास इकट्ठे हो गए थे। उस साधु की उम्र सौ वर्ष थी और ि
पछले पचास वर्षों से, सैकड़ों लोगों ने उससे प्रार्थना की कि उसे जो अनुभव हुए हों,
 उन्हें एक शास्त्र में एक किताब में लिख दे। हजारों लोगों ने उससे यह निवेदन कि

या था कि वह अपने आध्यात्मिक अनुभवों को, परमात्मा के संबंध में, सत्य के संबंध में, उसे जो प्रतीतियां हुई हों, उन्हें एक ग्रंथ में लिख दें। लेकिन वह हमेशा इनकार करता रहा था और आज सुबह उसने यह घोषणा की थी कि मैंने वह किताब लिख दी है, जिसकी मुझसे हमेशा मांग की गयी थी और आज मैं अपने प्रधान शिष्य को वह किताब भेंट कर दूंगा।

हजारों लोग उत्सुक होकर बैठे थे कि किताब भेंट की जाएंगी, जो कि मनुष्य जाति के लिए, हमेशा के लिए काम की होगी। उसने एक किताब अपने प्रधान शिष्या को भेंट की और उससे कहा, इसे संभालकर रखना। इससे बहुमूल्य शास्त्र कभी भी लिखा नहीं गया है, इससे महत्वपूर्ण कभी कोई किताब नहीं लिखी गयी। और जो लोग सत्य की खोज में होंगे, उनके लिए यह मार्गदर्शक प्रदीप सिद्ध होगी। इसे बहुत संभाल कर रखना। इसे मैंने पूरे जीवन के अनुभव से लिखा है।

उसने वह किताब अपने शिष्य को दी और सारे लोगों ने धन्यवाद में सिर झुकाए। लेकिन उस शिष्य ने क्या किया? सर्दी के दिन थे और वहां आग जलती थी। उसने उस किताब को आग में डाल दिया आग ने उस किताब को पकड़ लिया और वह राख, हो गयी। सारे लोग हैरान हो गए कि यह क्या किया। लेकिन लोग देखकर हैरान हुए, पर वह मरता हुआ साधु अत्यंत प्रसन्न था। उसने उठकर उस शिष्य को गले लगा लिया और उससे कहा--अगर तुम उस किताब को बचा कर रख लेते तो मैं बहुत दुखी होकर मरता, क्योंकि मैं समझता कि एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है मेरे पास, जो यह जानता है कि सत्य शास्त्रों में उपलब्ध नहीं हो सकता। तुमने किताब को आग में साल दिया, इससे मैं प्रसन्न हूं। कम से कम एक व्यक्ति मेरी बात समझता है।

यह बात कि सत्य शास्त्रों में उपलब्ध नहीं हो सकता, कम से कम एक के अनुभव में है। और उसने कहा--यह भी स्मरण रखो कि अगर तुम उस किताब को आग में न डालते और मेरे मरने के बाद देखते तो बहुत हैरान हो जाते। उसमें कुछ लिखा हुआ भी नहीं था। कोरे कागज थे।

और मैं आपसे कहूंगा, आज तक धर्मग्रंथों में कुछ भी लिखा हुआ नहीं है, वेद सब कोरे कागज हैं। जो लोग उनमें कुछ पढ़ लेते हैं, वे गलती में पड़ जाते हैं। जो जीता में कुछ पढ़ लेगा या कुरान में कुछ पढ़ लेगा या बाइबिल में कुछ पढ़ लेगा, वह गलती में पड़ जाएगा। स्मरण रखना, उन शास्त्रों में कुछ भी लिखा हुआ नहीं है। और जो आप पढ़ रहे हैं, वह आप अपने को पढ़ रहे हैं, उन शास्त्रों को नहीं।

और जिन संप्रदायों को आप खड़े कर लेते हैं और सत्य के जिन ग्रंथों को आप निर्मित कर लेते हैं, वह क्राइस्ट के आर कृष्ण के बनाए हुए नहीं हैं, बुद्ध और महावीर के बनाए हुए नहीं है। वह आपके निर्माण हैं। वह आपकी बुद्धि और अपके विचार से उत्पन्न हुए हैं। इन सारे पंथों का निर्माण, इन सारे पंथों का जन्म आपसे हुआ है। उनसे नहीं, जिन्होंने सत्य को जाना है, क्योंकि जो सत्य को जानता है, वह किसी संप्रदाय को जन्म कैसे दे सकता है? जो सत्य को जानता है, वह मनुष्य के भीतर ि

वभाजन की रेखाएं कैसे खड़ी कर सकता है? जिसने सत्य को जाना है, उसके लिए सारे भेद और सारी दीवालें गिर जाती हैं। लेकिन सत्य के नाम पर खड़े हुए ये संप्रदाय तो दीवालों को और भेदों को खड़े किए हुए हैं। ये भेद, मेरे और आपके द्वारा निर्मित किए हुए हैं।

आज की संध्या मैं आपसे यह कहना चाहूंगा कि जो व्यक्ति सत्य की खोज करना चाहता हो—और ऐसा कोई भी व्यक्ति खोजना मुश्किल है जो किसी न किसी रूप में सत्य की खोज में न लगा हो—उसे इन सारे शास्त्रों को, इन सारे संप्रदायों को, इन सारे विचार के ग्रंथों को छोड़ देना होगा। इन्हें छोड़कर ही कोई सत्य के आकाश में गति कर सकता है।जो इनसे दबा है, इनके भार से दबा है, वह पर्वत पर नहीं चढ़ सकेगा। वह इतना भारी है कि उसका ऊपर उठना संभव है।

सत्य को पाने के लिए निर्भार होना अत्यंत जरूरी है। जो लोग भारग्रस्त है, वे सत्य की ऊंचाइयों पर नहीं उड़ सकेंगे। उनके पंख टूट जाएंगे और नीचे गिर जाएंगे। हम यदि उत्सुक हैं और चाहते हैं कि सत्य का कोई अनुभव हो तो मैं आपसे कहूं कि जो व्यक्ति सत्य के अनुभव को उपलब्ध नहीं होगा, उसके जीवनमें न तो संगीत होता है, न उसके जीवन में शांति होती है, न उसके जीवन में कोई आनंद होता है।

ये इतने लोग दिखाई पड़ते हैं। अभी रास्ते से मैं आया और भी हजारों रास्तों से निकलना हुआ है। लाखों लोगों के चेहरे दिखाई पड़ते हैं, पर कोई चेहरा ऐसा दिखाई नहीं पड़ता जिसके भीतर संगीत हो। कोई आंख ऐसी दिखाई नहीं पड़ती कि जिसके भीतर कोई शांति हो। कोई भाव ऐसा प्रदर्शित नहीं होता कि भीतर आलोक का और प्रकाश का अनुभव हुआ हो।

हम जीते हैं, लेकिन इस जीवन में कोई आनंद, कोई शांति और कोई संगीत अनुभव नहीं होता। सारी दुनिया एक तरह की विसंगति से भर गयी है, सारी दुनिया के लोग ऐसी पीड़ा और संताप से भर गए हैं कि उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा है—जो ज्यादा विचारशील है, उन्हें दिखाई पड़ता है—कि जीवन का तो कोई अर्थ नहीं है। इससे तो मर जाना बेहतर है। और बहुत से लोगों ने पिछले पचास वर्षों में, बहुत से विचारशील लोगों ने आत्महत्याएं की हैं। वे लोग नासमझ नहीं थे, जिन्होंने अपने को समाप्त किया है।

आज जीवन की यह जो स्थिति है, आज जीवन की यह जो परिणति है, आज जीवन का जो दुख और पीड़ा है, इसे देख कर, कोई भी अपने को समाप्त कर लेना चाहेगा। ऐसी स्थिति में, केवल नासमझ ही जी सकता हैं। ऐसी पीड़ा और तनाव को, केवल अज्ञानी ही झेल सकते हैं। जिसे थोड़ा भी बोध होगा, वह अपने को समाप्त कर लेना चाहेगा। इसका तो अर्थ यह हुआ कि जिनको बोध होगा, वे आत्महत्या कर लेंगे? लेकिन महावीर ने, बुद्ध ने आत्महत्या नहीं की और क्राइस्ट ने आत्महत्या नहीं की, कंफ्यूशियस और लाओत्से ने आत्महत्या नहीं की! दुनिया में ऐसे लोग हुए हैं, जिन्होंने आत्महत्या के अतिरिक्त एक और मार्ग सोचा और जाना।

मनुष्य के सामने दो ही विकल्प हैं—या तो आत्महत्या है या आत्मसाधना है। जो व्यक्ति इन दोनों में से कोई विकल्प नहीं चुनता, उसे जानना चाहिए कि वह एक व्यर्थ के बोझ को ढो रहा है। वह जीवन को अनुभव नहीं कर पाएगा। वह करीब-करीब मृत है, उसे जीवित भी नहीं कहा जा सकता।

क्राइस्ट के जीवन का एक उल्लेख है—वह एक गांव से गुजर रहे थे और एक मछुए को उन्होंने मछलियां मारते देखा। वे उसके पीछे गए, उसके कंधे पर हाथ रखा और उस मछुए से कहा—तुम कब तक मछलियां मारने में जीवन गंवाते रहोगे? मछलियां मारने के अलावा भी कुछ और है। और क्राइस्ट हमारे कंधे पर भी हाथ रख कर यही पूछ रहे हैं कि कब तक तुम मछलियां मारते रहोगे? उसने लौट कर देखा उनकी आंखों में और उसे प्रतीत हुआ कि जीवन में मछलियां मारने से भी ज्यादा कुछ है, जो पाया जा सकता है। उनकी गवाही क्राइस्ट की आंखें थीं। उसने कहा—मैं तैयार हूं।जिस रास्ते पर आप ले चलना चाहें, मैं चलूंगा। क्राइस्ट ने कहा—मेरे पीछे आओ। उसने जाल को वहीं फेंक दिया और क्राइस्ट के पीछे गया। वह गांव के बाहर ही निकल पाया था कि किसी ने आकर खबर दी कि तुम्हारा पिता जो बीमार था, उसकी अभी-अभी मृत्यु हो गयी है। तुम घर लौट चलो। उसका अंतिम संस्कार करके जहां भी जाना हो, चले जाना। उस मछुए ने क्राइस्ट से कहा—मैं जाऊं, अपने पिता की अत्येष्टि कर आऊं, फिर मैं लौट आऊंगा, क्राइस्ट ने एक बड़ी अदभुत बात कही, लेट दी डैड बरी देयर डैड, मुर्दों को मुर्दे दफनाने दो। तुम मेरे पीछे आओ। यह वचन बहुत अदभुत है। उन्होंने यह कहा, मुर्दे मुर्दे को दफना लेंगे, तुम मेरे पीछे आओ।

हम सबकी गिनती उन्होंने मुर्दों में की और सारी जमीन पर बहुत कम लोग जीवित हैं, अधिक लोग मुर्दे ही हैं। तीन अरब लो हैं अभी इनमें अधिक लोग मुर्दे हैं, मुश्किल से कोई आदमी जीवित है। यह मैं क्यों कह रहा हूं आपसे कि मुर्दे हैं? हम तब तक मुर्दे ही हैं, हम मरे हुए ही लोग हैं जो किसी भांति जी रहे हैं और चल रहे हैं। हम लाशों की भांति है, जो चल रही है। हम तब तक लाशों की भांति होंगे, जब तक हमें वास्तविक जीवन का पता न चल जाएगा।

वह व्यक्ति जीवित कैसे हो सकता है जिसे जीवन के मूल स्रोत का कोई पता न हो? वह व्यक्ति जीवित कैसे कहा जा सकता है जिसे अपने भीतर, जो जीवन की धारा बह रही है, उसमें उसकी कोई प्रतिष्ठा न हो? वह व्यक्ति जीवित कैसे हो सकता है या कैसे जीवित कहा जा सकता है जिसे उस तत्व का कोई पता न हो जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती है? मेरे भीतर, आपके भीतर, सबके भीतर वह तत्व भी मौजूद है, जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती।

हमारे भीतर दोहरे प्रकार का व्यक्तित्व है—एक जो मर जाएगा, दूसरा जो शेष रहेगा। जो व्यक्ति अपने को इतना ही मानते हों कि मरना पर उनकी समाप्ति हो जाती है, वे जीवित नहीं हो सकते, वे जीवित नहीं कहे जा सकते। अपने भीतर उस

जीवन को अनुभव करने के बाद ही कोई जीवित होता है जिसकी कोई मृत्यु नहीं ह ोती और ऐसे तत्व के अनुसंधान का नाम ही सत्य की खोज है।
सत्य की खोज कोई बौद्धिक, तार्किक खोज नहीं है कि हम कुछ विचार करें और ग णित करें। सत्य की खोज किन्हीं शास्त्रों की खोज किन्हीं विद्याओं के सीख लेने की बात नहीं है। सत्य की खोज अपने भीतर अमृत की खोज है। जो व्यक्ति अपने भीत र अमृत को उपलब्ध होता है केवल वही सत्य को जानता है और जो व्यक्ति अमृत को उपलब्ध नहीं होता, उसके जीवन में सब असत्य है, सब झूठ उसके जीवन में कुछ भी सार्थक नहीं है।
हमारी दिशा, हमारे सोचने विचारने की, हमारी साधना की, हमारे जीवन की दिशा , यदि अमृत की तलाश में संलग्न होती हो, अगर हम उस दिशा में थोड़े चलते हों , अगर हमारे कदम उस रास्ते पर थोड़े पड़ते हों और हमारे चरण उस मार्ग पर ज ाते हों तो जानना चाहिए कि हम जीवन की तरफ विकसित हो रहे हैं, अन्यथा हमा री प्रत्येक घड़ी हमारी मौत को करीब लाती है और हम मर रहे हैं।
मैं जिस दिन पैदा हुआ, उसी दिन मरना शुरू हो गया हूं। मैं रोज मरता जा रहा हूं और अगर मैं जीवन के कुछ ऐसे सत्य को अनुभव न कर लूं, जो इस मरने की ि क्रया के बीच स्थिर हो, जो इस मरने की क्रिया के बीच मर न रहा हो तो मेरे जी वन का क्या मूल्य हो सकता है? या मेरे जीवन में कौन सा अर्थ और कौन सा आ नंद उपलब्ध हो सकता है?
जो लोग मृत्यु पर केंद्रित हैं या जो लोग अपने भीतर केवल उसे जानते हैं जो मरण धर्मा है, वे आनंद को अनुभव नहीं कर सकेंगे। आनंद की अनुभूति, अमृत की अनुभू ति की उत्पत्ति है। आनंद को जान कर ही कोई अमृत को जानता है। इसलिए अप ने देश में या जिन लोगों ने कहीं की जमीन पर कभी जाना है, उन्होंने परमात्मा क ो आनंद का स्वरूप माना है।
परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है,जिसको आप खोज लेंगे। परमात्मा आनंद की चरम अ नुभूति है। उन अनुभूति में आप कृतार्थ हो जाते हैं और सारे जगत के प्रति आपके मन मग एक धन्यता का बोध हो जाता है। आप में कृतज्ञता पैदा होती है। उस कृत ज्ञता को ही मैं आस्तिकता कहता हूं। ईश्वर को मानने को नहीं, वरन अपने भीतर एक ऐसे आनंद को अनुभव करने को कि उस आनंद के कारण आप सारे जगत के प्रति कृतज्ञ हो जाए।
वह जो कृतज्ञता का, वह जो ग्रेटीटयट का अनुभव है, वही और वही परम आस्तिक ता है। ऐसी आस्तिकता की खोज जो मनुष्य नहीं कर रहा है, वह अपने जीवन के अवसर को व्यर्थ खो रहा है। यह चिंतनीय और विचारणीय है और यह हर मनुष्य के सामने एक प्रश्न की तरह खड़ा हो जाना चाहिए। यह असंतोष, हर मनुष्य के भ ीतर पैदा होना चाहिए कि वह खोजे और जीवन को गंवा न दे।
लेकिन सारी दुनिया हम दो तरह के लोगों में बंट गयी है। एक तो वे लोग हैं जो मानते ही हनीं कि कोई आत्मा है, कोई परमात्मा है। दूसरे वे लोग हैं जो मानते हैं

कि परमात्मा है और आत्मा है। ऐसे दोनों प्रकार के लोगों ने खोजें बंद कर दी हैं। एक वर्ग ने स्वीकार कर लिया है कि परमात्मा नहीं है, आत्मा नहीं है, इसलिए खोज का कोई प्रश्न नहीं है। दूसरे वर्ग ने स्वीकार कर लिया है कि आत्मा है, परमा त्मा है, इसलिए उनके लिए भी खोज का कोई कारण नहीं रह गया। आस्तिक और नास्तिक दोनों ने खोज बंद कर दी है। विश्वासी भी खोज बंद कर देता है, अविश्व ासी भी खोज बंद कर देता है।

खोज तो केवल वे लोग करते हैं जिनकी जिज्ञासा मुक्त होती है और जो किसी विश वास से, किसी पंथ से, किसी विचार की पद्धति से, किसी आस्तिकता से, किसी नाि स्तकता से अपने को बांध नहीं लेते। वे लोग धन्य हैं जिनकी जिज्ञासा मुक्त है। जिन का संदेह मुक्त हो, जो सोच रहे हों और जिन्होंने दूसरों के विचार को स्वीकार न कर लिया हो।

मैं अभी एक गांव में अपने एक मित्र के साथ गया था। बहुत धूप थी रास्ता बहुत गरम था। उनके जूते कहीं खो गए थे, कोई चुरा ले गया था। तो मैंने उनसे कहा—दूसरी चप्पल पहन लें—वे बोले—दूसरे की पहनी हुई चप्पलें मैं कैसे पहनूं? मैंने उनसे कहा, दूसरे के पहने हुए जूते कोई पहनना पसंद नहीं करता, दूसरे के पहने हुए क पड़े पहनना कोई पसंद नहीं करता, लेकिन दूसरों के अनुभव किए हुए विचार सारे लोग स्वीकार कर लेते हैं। दूसरों के उतारे कपड़े और दूसरों के बासी भोजन को क ोई स्वीकार नहीं करेगा, लेकिन हम सारे लोगों ने दूसरों के बासी विचार स्वीकार क र लिए हैं, फिर चाहे वे विचार बुद्ध के हों, महावीर के हों, चाहे किसी के हों। या वे कितने ही पवित्र पुरुष के विचार क्यों न हों, अगर वे दूसरों के अनुभव हैं और उनको हमने स्वीकार कर लिया है तो हम स्वयं सत्य को जानने से वंचित हो जाएंगे ।

इस जगत में केवल वे ही लोग, केवल वे ही थोड़े से लोग—सत्य को अनुभव कर पा ते हैं, जो किसी के विचार को स्वीकार नहीं करते। जो किसी के उधार चिंतन को अंगीकार नहीं करते और जो अपने मन के आकाश को, अपने मन के चिंतन को मु क्त रख पाते हैं।

बहुत कठिन है अपने चिंतन को मुक्त रख पाना। अगर आप अपने भीतर देखेंगे तो शायद ही एकाध विचार ऐसा मालूम होगा, जो आपका अपना हो। वे सब संगृहीत मालूम होंगे, वे सब दूसरों से लिए हुए मालूम होंगे। और ऐसी विचार शक्ति जो दू सरों के लिए हुए विचारों से दब जाती है, सत्य के अनुसंधान में समर्थन हो जाती है। कोई व्यक्ति दूसरों के जितने ज्यादा विचार स्वीकार कर लेता है, उतनी उसकी विचार शक्ति नीचे दब जाती है। जो व्यक्ति, जितना दूसरों के विचार अस्वीकार क र देता है, उतनी उसके भीतर की विचार शक्ति जाग्रत होती है और प्रबुद्ध होती है। सत्य पाने के लिए स्मरणीय है कि किसी का विचार, कितना ही सत्य क्यों न प्र तीत हो, अंगीकार के योग्य नहीं है।

जो व्यक्ति इतना साहस करता है कि सारे विचारों को दूर हटा देता है, उसके भीत र कैसे कोई कुआं खोदे और सारी मिट्टी और पत्थरों को अलग कर दे तो नीचे से जल के स्रोत उत्पन्न हो जाते हैं, वैसे ही कोई व्यक्ति अगर अपने भीतर से, सारे प राए विचारों को अलग कर दे, दूर हटा दे तो भीतर जल स्रोत उपलब्ध होते हैं। उ सकी स्वयं की शक्ति जागती है और उस स्वयं की शक्ति के जागरण में ही सत्य के अनुभव की संभावना है।

एक दफा ऐसा हुआ कि बुद्ध के पास कुछ लोग एक अंधे को लेकर गए। उन्होंने क हा, इस अंधे आदमी को हम बहुत समझाते हैं कि प्रकाश है, लेकिन यह मानने को राजी नहीं होता। बुद्ध ने कहा—धन्य है यह अंधा आदमी! इसकी संभावना है कि यह कभी आंख को खोज ले। लोगों ने कहा, आप क्या कहते हैं! हम इसे समझाते हैं हजार तरह से कि प्रकाश है, लेकिन यह मानने को राजी नहीं होता। बुद्ध ने कह ा, धन्य है, यह अंधा आदमी! इसकी संभावना है कि यह कभी प्रकाश को खोज ले। अगर इसने प्रकाश को मान लिया, दूसरों की आंखों के अनुभव को मान लिया तो इसकी अपनी आंख की खोज बंद हो जाएगी। बुद्ध से उन्होंने कहा कि आप इसे सम झाएं कि प्रकाश है। बुद्ध ने कहा—यह पाप मैं नहीं करूंगा। मैं इसे यह नहीं समझा सकता कि प्रकाश है। मैं इसे यह जरूर बता सकता हूं कि आंखें खोलने का उपाय है। बुद्ध ने कहा, मेरे पास इसे मत लाओ। किसी विचारक की इसे जरूरत नहीं है, इसे किसी वैद्य के पास ले जाओ और इसे कोई विचार मत दो, कोई उपदेश मत द ो। इसे उपचार की जरूरत है, इसे चिकित्सा की जरूरत है। वह अंधा एक वैद्य के पास ले जाया गया। भाग्य की बात, कुछ ही महीनों में इलाज से उसकी आंख ठीक हो गयी। वह नाचता हुआ आया और बुद्ध के पैरों पर गिर पड़ा। उसने कहा, प्रका श है, क्योंकि मेरे पास आंख है। आंख ही प्रकाश का प्रमाण है और कोई भी प्रमाण नहीं है। और जो दूसरे की आंखों पर निर्भर हो जाएंगे, उनकी संभावना बंद हो जा एगी कि वे स्वयं की आंखों को उपलब्ध हो सकें।

इस समय जमीन पर सत्य की शोध बंद है। उसका कारण यह नहीं कि लोग सत्य के विपरीत चले गए हैं। उसका कारण यह है कि लोग शास्त्रों के बहुत पीछे चले ग ए हैं। उसका कारण यह है कि सत्य की दिशा मग उनकी प्यास समाप्त हो गयी है, बल्कि इसका कारण यह है कि वे यह भूल गए हैं कि दूसरों के बहुत ज्यादा विचा रों का बोझ उनकी स्वयं की विवेक की ऊर्जा को पैदा नहीं होने देता है। उनकी स्व यं की अंतशक्ति जाग नहीं पाती है।

सत्य की खोज में जो लोग उत्सुक हैं, उनके लिए पहली बात होगी कि वे सारे परा ए विचारों को अस्वीकार कर दें। वे इनकार कर दें। खाली और शून्य होना बेहतर है, बजाए दूसरों के उधार विचारों से भरे होने के। नग्न होना बेहतर है, बजाय दूस रों के वस्त्र पहने लेने के। अंधा होना बेहतर है, बजाए दूसरों की आंखों से देखने के । यह संभावना पहली है। इस भांति व्यक्ति की जिज्ञासा मुक्त होती है और विचार शक्ति जागती है।

विचारशक्ति का जागरण पहली शर्त तो यह मानना है। और दूसरी एक बात बहुत जरूरी है जो कि विचारशील लोगों को समझनी चाहिए। वह यह है कि विचार की शक्ति बड़ी अदभुत है और वह बड़े विपरीत मापदंडों से, बड़ी विपरीत परिस्थितियों में पैदा होती है।

साधारणतः लोग सोचते हैं कि आदमी जितना विचार करेगा, उतनी ज्यादा विचार की शक्ति जाग्रत होगी, लेकिन यह गलत है। जो आदमी जितना निर्विचार होने की साधना करेगा, उतनी उसकी विचार की शक्ति जाग्रत होती है। विचार आप क्या करेंगे? जब भी आप विचार करेंगे, तब आप दूसरों के विचारों को दोहराते रहेंगे। जब भी आप विचार करेंगे, तब आपकी स्मृति, आपकी मेमोरी उपयोग में आती रहे गी।

अधिकतर लोग स्मृति को ही ज्ञान समझ लेते हैं, स्मृति को ही विचार समझ लेते हैं। जब आप सोचते हैं, तब आपके भीतर गीता बोलने लगती है, महावीर और बुद्ध बोलने लगते हैं। जब आप सोचते हैं तो आपका धर्म, आपकी शिक्षाएं, जो आपको सिखायी गई हैं, आपको भीतर बोलने लगती हैं। तब सचेत हो जाना चाहिए। ये विचार नहीं हैं4 यह बिलकुल यांत्रिक स्मृति है। यह बिलकुल मैकेनिकल मेमोरी है जो भर दी गयी है और बोलना शुरू कर रही है। इसको जो विचार समझ लेगा, वह गलती में पड़ जाएगा। जो इसका अनुसंधान करेगा, वह विचार से विचार में भटकता रहेगा और समाप्त हो जाएगा। उसे सत्य का कोई अनुभव नहीं होगा।

फिर विचारों के लिए क्या करना होगा? विचार की शक्ति को जिसे जगाना है, उसे विचार करना छोड़ना होगा। उसे निर्विचार में ठहराना होगा।

हम इस निर्विचारणा की स्थिति को अपने देश में समाधि कहते हैं। जो निर्विचार में ठहर जाता है, थाटलेसनेस में—जहां कोई विचार नहीं है, ऐसी निष्कंप अवस्था में ठहर जाता है, जैसे किसी भवन में कोई दीया जलता हो और कोई हवाएं न आती हों और दीए की बाती बिलकुल ठहर जाए, ऐसे ही जब कोई व्यक्ति अपनी चेतना को, अपनी कांशसनेस को, अपनी अवेयरनेस को, अपने होश को ठहरा लेता है और उसमें कोई कंप नहीं आते। उस निर्विचार, निष्कंप क्षण में उसके भीतर विचार की चरम शक्ति का जागरण होता है। और तब जो देखता है, उसे आंखें मिलती हैं। समाधि से आंखें मिलती हैं और व्यक्ति सत्य को देख पाता है। सत्य सोचा नहीं जाता, देखा जाता है।

पश्चिम में जिसे फिलासफी कहा जाता है, भारत में हम उसे दर्शन कहते हैं। दर्शन और फिलासफी पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। जो लोग समझते हैं कि फिलासफी और दर्शन एक ही बात है, उनका जानना बिलकुल गलत है। दर्शन का चिंतन से कोई संबंध नहीं है, दर्शन का संबंध तो अचिंत्य हो जाने से है। दर्शन का संबंध समाधि से है, तर्क से नहीं है, विचार से नहीं है। निर्विचार हो जाने से है और पश्चिम की फिलासफी का संबंध चिंतन से है, विचार से है। पश्चिम की फिलासफी विचार है, भारत का दर्शन निर्विचार होना है।

हमने अपने मुल्क में एक अदभुत बात साधी और एक बहुत अदभुत प्रयोग किया। हमने यह प्रयोग किया कि अगर मनुष्य का सारा चिंतन बंद हो जाए तो क्या होगा ? जम मनुष्य के सारे विचार बंद हो जाएंगे तो क्या होगा? जब मनुष्य कुछ भी न हीं सोच रहा होगा, तब क्या होगा? यह बड़ी अदभुत बात है।जब आप कुछ भी नह ीं सोच रहे हैं, तब आपको दिखाई पड़ना शुरू होता है। जब चिंतन बंद होता है तो दर्शन उपलब्ध होता है। जब विचार की लहरें बंद होती हैं तो आंखें इतनी स्वच्छ होती हैं कि वह देख पाती हैं। जब विचार चलते रहते हैं तो देखना मुश्किल हो जा ता है। हम विचार से इतने भरे हैं कि करीब-करीब अंधे हैं, हमको कुछ दिखाई नह ीं पड़ता।

मेरे एक मित्र सारी दुनिया का चक्कर लगा कर लौटे। उन्होंने बहुत झीलें देखीं, बहु त प्रपात देखे। फिर वे मेरे गांव में आए। मैंने उनसे कहा कि गांव के पास भी एक प्रपात है, वह मैं दिखाने ले चलूं? वे बोले, मैंने बहुत बड़े-बड़े प्रपात देखते हैं, इसक ो देखने से क्या होगा? मैंने कहा, अगर उन प्रपातों का विचार आप छोड़ दें तो यह प्रपात भी देखने में अदभुत है। अगर उन प्रपातों का विचार आप छोड़ दें और वह आपकी आंख में तैरते न रहें तो आपको यह प्रपात भी दिखाई पड़ेगा और यह ब हुत अदभुत है।

वे मेरे साथ गए, दो घंटे हम उस प्रपात पर थे, लेकिन उन्होंने एक क्षण भी उस प्र पात को नहीं देखा। वह मुझे बताते रहे, अमेरिका में कोई प्रपात कैसा है, स्विटजर लैंड में कोई प्रपात कैसा है। उन्होंने कहां-कहां प्रपात देखे, इसकी चर्चा करते रहे। दो घंटे के बाद जब हम वापस लौटे तो वह मुझसे बोले, बड़ा सुंदर प्रपात था।

मैंने कहा, यह बिलकुल झूठ कर रहे हैं। इस प्रपात को आपने देखा नहीं। यह प्रपात आपको दिखाई नहीं पड़ा और मुझे अनुभव हुआ कि मैं एक अंधे आदमी को लेकर आ गया हूं।

वह बोल, मतलब? मैंने कहा, आप उन प्रपातों के विचार से इतने भरे थे, आपकी आंखें इतनी बोझिल थीं, आपका चित्त इतना कंपित था, आपके भीतर इतनी स्मृति यां घूर रही थी कि उन सबके पार इस प्रपात को देखना असंभव था। इस प्रपात को देखने की जरूरत अगर अनुभव होती तो सारी स्मृतियों को, उन सारे विचारों को, उन सारे खयालों को छोड़ देने की जरूरत थी। जब वे छूट जाते तो वह स्थान मि लता, खाली और स्वच्छ, जहां से इसके दर्शन हो सकते थे।

केवल वे ही लोग जगत में दर्शन को उपलब्ध होते हैं जो निर्विचार देखना सीख जा ते हैं।

जिनमें देखने की एक ऐसी क्षमता पैदा होती है जो विचार में नहीं, निर्विचार में है और तब ऐसे लोगों ने ही यह कहा है कि सारा जगत परमात्मा से आच्छन्न है। ऐसे लोगों ने जब दरख्तों को देखा होगा, जिनकी आंखें स्वच्छ और निर्मल हैं और जिन के चित्त विचार से ग्रस्त नहीं हैं तो दरख्त ही दिखाई नहीं पड़ता, दरख्त के भीतर जो प्राण की सत्ता है, वह अनुभव में आ जाती है। और जब वे आपको देखेंगे तो अ

ापकी देह दिखाई नहीं पड़ती, बल्कि देह के पीछे जो आत्मा छिपी है, वह भी दिखा
ई पड़ जाती है।
जिनकी आंखें निर्मल हैं और स्वच्छ हैं और जिनके चित्त निर्विचार हैं और अशांत हैं,
 उन्हें इस जगत के कण-कण में परमात्मा का अनुभव होना शुरू हो जाता है। जित
नी गहरी दृष्टि उनकी होती जाती है, जितनी स्वच्छ और निर्मल, उतना ही यह ज
गत मिटता चला जाता है और परमात्मा का अनुभव शुरू हो जाता है।
एक घड़ी आती है जब इस जगत में जगत नहीं रह जाता, केवल ईश्वर रह जाता
है। वह घड़ी आनंद की घड़ी है, वह घड़ी परम धन्यता की घड़ी है। उस घड़ी के बा
द आपके भीतर संगीत शुरू होता है। उसके बाद फिर आप भिखमंगे नहीं रह जाते,
 सम्राट हो जाते हैं। दरिद्र नहीं रह जाते। दुख और पीड़ाएं आपकी गिर जाती हैं अ
ौर भीतर अत्यंत वैभव की उपलब्धि होती है। उसे हम स्वर्ग कहें, मोक्ष कहें, निर्वा
ण कहें, उसे हम जो भी नाम देना पसंद करें, दे सकते हैं। मात्र इतनी ही घटना घ
टती है कि आपको अपने भीतर सच्चिदानंद का अनुभव होने लगता है।
यह अनुभूति यदि मनुष्य को न हो पाए और ऐसी सभ्यता और संस्कृति जो इस अनु
भूति की तरफ न ले जाती हो, वह झूठी है, वह मनुष्य विरोधी है, वह घातक है,
वह विषाक्त है और उसका जितनी जल्दी अंत हो जाए, उतना बेहतर है। हमने अ
पने ही हाथों एक ऐसी सभ्यता और संस्कृति को धीरे-धीरे जन्म दिया है, जो हमें इ
स अनुभूति तक ले जाने में बाधा बन रही है। उस अनुभूति तक ले जाने से सहयोग
ी नहीं रह गई। वह अनुभूति जिस संस्कृति से पैदा हो, वही संस्कृति मानवीय हो स
कती है। वह संस्कृति मनुष्य के हित में हो सकती है। वही संस्कृति कल्याणकारी औ
र मंगलदायी हो सकती है।
मैंने ये थोड़ी सी बातें आपसे कहीं। ये थोड़ी सी बातें, मैंने इस आशा से कहीं हैं कि
 आप चाहें तो आपने माध्यम से, उस संस्कृति को जन्म देने में सहयोगी हो सकते हैं
। प्रत्येक मनुष्य सहयोगी हो सकता है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य एक घटक है सारे सम
ाज का, सारी मनुष्यता का। जब मैं अपने को बनाता और बिगाड़ता हूं तो मैं साथ
ही सारी मनुष्यता को बना और बिगाड़ रहा हूं। जब मैं अपने भीतर शांति के आधा
र रखता हूं तो मैं सारी मनुष्यता के लिए शांति का मार्ग खोल रहा हूं और जब मैं
 अपने भीतर अशांति और विषाद के बीज बोता हूं तो मैं सारी मनुष्यता के लिए
वही कर रहा हूं। जो मैं अपने साथ कर रहा हूं, वह मैं अनजाने मग सारी मनुष्य
जाति के साथ कर रहा हूं, यह स्मरण होना जरूरी है, क्योंकि हम सारे लोग घटक
हैं, इकाइयां हैं और हम बनाते हैं विश्व को। हम अपने को निर्मित करके सारे जग
त को बनाते हैं।
आज दुनिया जो इतने युद्ध, इतनी हिंसा, इतनी घृणा, इतने वैमनस्य से भरी हुई है
, इसके लिए कौन जिम्मेवार है? इसके लिए वे जिम्मेवार है जिन्होंने परमात्मा का
अनुसंधान छोड़ दिया है, अंतरात्मा का अनुसंधान छोड़ दिया है, क्योंकि मेरा मानना
 यह है और मैं समझता हूं, यह बात आपकी समझ में आ सकेगी कि जो व्यक्ति अ

पने भीतर आनंद से भरा हुआ नहीं होता, वह व्यक्ति दूसरों को दुख देने में आनंद लेने लगता है।

यह दुनिया इतनी दुखी है, क्योंकि इतने दुखी लोग हैं, आनंद शून्य और आनंद रहित कि उनका एक ही आनंद रह गया है कि वह दूसरों को पीड़ित करें, परेशान करें, दुखी करें। जब वे दूसरों को दुखी देखते हैं तो उन्हें अपने सुखी होने का थोड़ा सा भ्रम पैदा होता है। और अगर ऐसा होता रहा तो युद्ध बढ़ते जाएंगे, हमारे हाथ एक दूसरे के गले पर कसते जाएंगे और हमारे हृदय कठोर और पत्थर होते जाएंगे। इसका अंतिम परिणाम शायद यह हो कि हम सारे मनुष्यों को समाप्त कर डालें। हम उसकी तैयारी में हैं।

पिछले दो महायुद्धों में दस करोड़ लोगों की हमने हत्या की है। और कोई आदमी मुझे दिखाई नहीं पड़ता जिसका यह खयाल हो कि इन दस करोड़ लोगों की हत्याओं में हमारा हाथ है। और अभी हम तैयारी कर रहे हैं तो बड़ी हत्या की। शायद सामूहिक आत्मघात, एक युनिवर्सल सुसाइड की तैयारी में हम लगे हैं।

यह कोई राजनीतिक वजह नहीं है इसके पीछे और न कोई आर्थिक वजह है। इसके पीछे बुनियादी वजह आध्यात्मिक है। जो लोग अंतर में आनंद को अनुभव नहीं करेंगे, उनका अंतिम परिणाम दूसरों को दुख देना, दूसरों की मृत्यु में आनंद लेना होगा। वे अंततः युद्ध में सुख लेंगे।

यह शायद आपको पता न हो, पिछले दो महायुद्धों के समय में एक अदभुत बात सारे युरोप में अनुभव हुई और वह यह था कि जब युद्ध चलते थे तो लोगों ने आत्मघात बिलकुल नहीं किए। जब युद्ध चलते थे तो लोगों ने हत्याएं बहुत कम कीं, डाकेजनी और चोरी कम हो गयी। मनोवैज्ञानिक हैरान हुए कि यह क्या वजह है? युद्ध चलता है तो लोग आत्महत्या क्यों नहीं करते? युद्ध चलता है तो लोग एक-दूसरे की हत्या क्यों नहीं करते, डाकेजनी और चोरियां और अनाचार कम क्यों हो जाता है? तो पता चला, युद्ध में इतनी हिंसा होती है कि उन सारे लोगों को काफी आनंद मिल जाता है, दूसरी हिंसा करने की जरूरत उन्हें नहीं रह जाती।

जो लोग दुखी होंगे, वे दुख का संसार निर्मित मरेंगे, क्योंकि यह कैसे संभव है कि जो मेरे भीतर हो, उसके अलावा मैं कुछ निर्मित कर सकूं? आज दुनिया में अगर घृणा दिखाई पड़ती है, वैमनस्य दिखाई पड़ता है तो यह कोई ऊपरी बातें नहीं है, ये केवल लक्षण हैं कि भीतर आनंद नहीं है।अगर भीतर आनंद हो तो आनंदित आदमी के जीवन में एक घटना घटती है कि जो व्यक्ति जितने आनंद से भरता जाता है, उतना ही वह दूसरों को आनंदित करने की प्रेरणा से भी भर जाता है। आनंदित व्यक्ति किसी को दुखी नहीं कर सकता। आनंदित व्यक्ति के लिए असंभव है कि वह दूसरे को पीड़ा दे और उसमें सुख माने। उसका तो सारा जीवन आनंद को बांटना बन जाता है।

ब्लावटस्की ने सारी दुनिया की यात्रा की। वह भारत में थी, और दूसरे मुल्कों में थी। लोग हमेशा देख कर हैरान हुए, वह एक झोला अपने साथ रखती थी और जब

गाड़ियों में बैठती तो उसमें से कुछ निकाल कर बाहर फेंकती रहती। लोग उससे पूछते कि यह क्या है? वह कहती कि कुछ फूलों के बीज हैं। अभी वर्षा आएगी, फूल खिलेंगे, पौधे निकल आएंगे।

लोगों ने कहा, लेकिन तुम इस रास्ते पर दुबारा निकलेगी, इसका तो कुछ पता नहीं। उसने कहा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। फूल खिलेंगे, कोई उन फूलों को देखकर आनंदित होगा, यह मेरे लिए काफी आनंद है।

उसने कहा—जीवनभर बस एक ही कोशिश की, जब से मुझे फूल मिले हैं, तब से फूल सबको बांट दूं, बस यही चेष्टा रही है। और जिस व्यक्ति को भी फूल मिल जाएंगे, वह उनको बांटने के लिए उत्सुक हो जाएगा।

आखिर बुद्ध या महावीर क्या बाप रहे हैं? जितने वर्ष तक बुद्ध जीवित रहे क्या बांटते रहे? किस चीज को बांटने के लिए भाग रहे हैं और दौड़ रहे हैं? कोई आनंद उपलब्ध हुआ है, उसे बांटना जरूरी है। साधारण आदमी, दुखी आदमी, सुख को पाने के लिए दौड़ता है और जो व्यक्ति प्रभु को अनुभव करता है, वह सुख को बांटने के लिए दौड़ने लगता है। साधारण आदमी, सुख को पाने के लिए दौड़ता है और जो व्यक्ति प्रभु को अनुभव करता है, वह सुख को बांटने के लिए दौड़ने लेता है। एक की दौड़ का केंद्र वासना होती है, दूसरे की दौड़ का केंद्र करुणा हो जाती है। आनंद करुणा को उत्पन्न करता है और जितना आनंद भीतर फलित होता है, उतनी आनंद की सुगंध चारों तरफ फैलने लगती है। आनंद की सुगंध का नाम प्रेम है। जो व्यक्ति भीतर आनंदित होता है, उसका सारा आचरण प्रेम से भर जाता है। व्यक्ति अंतर में आनंद को उपलब्ध हो तो आचरण में प्रेम प्रकट होने लगता है। आनंद का दीया जलता है तो प्रेम की किरणें सारे जगत में फैलने लगती है। और यदि दुख का दिया भीतर हो तो सारे जगत में अंधकार फैलता है—वह घृणा का हो, वैमनस्य का हो।

यह संस्कृति, यह सभ्यता जिसमें हम जी रहे हैं, अत्यंत जराजीर्ण और मृत्यु के कगार पर खड़ी है। जिनको थोड़ा भी होश है, वह इस पर विचार करेंगे। अगर वे विचार करेंगे तो मेरी बातों में उन्हें कोई सार्थकता दिखाई पड़ सकती है। तब उनके सामने एक ही कर्तव्य होगा एक ही कर्तव्य, वह मनुष्य जाति के बदलने का नहीं, स्वयं को बदलने और परिवर्तित करने का। उनके सामने एक ही कर्तव्य होगा कि वह अपने भीतर दुख को विलीन कर दें, विसर्जित कर दें और आनंद को उपलब्ध हो जाएं।

मैंने बताया है, कैसे वह आनंद को उपलब्ध हो सकेंगे? यदि वे निर्विचार को साधते हैं तो उन्हें उपलब्ध होगा, तब यह जगत उन्हें पदार्थ दिखाई पड़ेगा, प्रभु दिखाई प. डने लगेगा। और अगर यह सारा जगत प्रभु से आंदोलित दिखाई पड़ने लगे, अगर यहां मुझे सारे लोगों के भीतर परमात्मा का अनुभव होने लगे तो मेरे जीवन का आनंद, उसकी क्या सीमा रह जाएगी? क्योंकि जब किसी व्यक्ति को, किसी दूसरे व्यक्त में परमात्मा अनुभव होता है और जब किसी व्यक्ति को स्वयं में परमात्मा का

अनुभव होता है तो सारी जगत सत्ता से एक हो जाता है। उसके प्राण सारी जगत सत्ता से मिल जाते हैं। वह सारी जगत सत्ता से संगीत का एक स्वर हो जाता है अ ौर तब उसका जीवन उसकी चर्या, उसका उठना-बैठना, उसका सोचना-विचारना, तब उसके समस्त जीवन उपक्रम आनंद को बांटने लगते हैं, विस्तीर्ण करने लगते हैं। सत्य की खोज कोई बौद्धिक जिज्ञासा मात्र नहीं है, बल्कि प्रत्येक मनुष्य के प्राणों के प्राणों की प्यास है। जो व्यक्ति इस प्यास को अनुभव नहीं कर रहा है या इस प्यास की उपेक्षा कर रहा है, वह अपनी मनुष्यता का अपमान कर रहा है। वह अपनी स बसे गहरी प्यास को, सबसे गहरी भूख को अधूरी छोड़ रहा है। इसके दुष्परिणाम उ से भोगने पड़ेंगे। हम सारे लोग, अंतरात्मा की जो प्यास है, उसकी उपेक्षा करने का दुष्परिणाम भोग रहे हैं। यह दुष्परिणाम मिट सकता है—थोड़े विवेक के जागरण से, थोड़े विवेक के अनुकूल जीवन की साधना को उपलब्ध होने से थोड़ा विवेक के अनु कूल और प्रकाश के अनुकूल अपने को व्यवस्थित करने से, इस तरह दुर्भाग्य विलीन हो सकता है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं हैं। इस आशा में नहीं कि मैं जो कहूं, वह आप मान लें, क्योंकि मैं आपका शत्रु नहीं हूं कि कुछ विचार आपके मस्तिष्क में डाल दूं। इस आ शा में ये बातें नहीं कही हैं। इन बातों को आप देखेंगे, मान नहीं लेंगे। इन बातों के प्रति जाग्रत होंगे, इन्हें स्वीकार नहीं कर लेंगे। इन बातों की सचाई अगर आपको अनुभव हो तो उसे अनुभव करेंगे, लेकिन इन विचारों का अपने भीतर नहीं रखेंगे। कोई विचार कितना ही मूल्यवान हो, फेंक देने जैसा है। जहां, उसमें जो अंतर्दृष्टि है , अगर वह आपके भीतर जग जाए तो काम हो गया। तो मैंने यह जो थोड़ी सी बा तें कहीं हैं, उनकी सचाई अगर आपको अनुभव हो तो यह आपके काम की हो जाए गी और अगर ये विचार आपके भीतर बैठ गए तो मैं आपको बोझ और बढ़ाने में सहयोगी हूं और वह बोझ वैसे ही बहुत काफी है। वह बोझ बहुत ज्यादा है और उ स बोझ से आप इतने दबे हैं कि अब उस बोझ को बढ़ाने की और कोई जरूरत नह ीं है।

दुनिया को अब किसी पैगंबर की, किसी तीर्थंकर की, किसी अवतार की कोई जरूर त नहीं है। वे काफी हैं। दुनिया में को किसी नए शास्त्र की, नए संप्रदाय, नए धर्म की जरूरत नहीं है। वे जरूरत से ज्यादा हैं। उनका बोझ बहुत है। अब दुनिया में ज रूरत इस बात की है कि आपके बोझ को उतारने का कोई विचार हो सके। आपको निर्मुक्त और निर्बंध करने का कोई विचार हो सके। आपकी यात्रा चित्त को सरल और सहज बनाने का कोई उपाय हो सके। उस संबंध में ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं ।

हो सकता है कोई बात आपके भीतर अंतर्दृष्टि बन जाए। और अंतर्दृष्टि बन जाए त ो वह फिर आपकी हो जाती है, मेरी नहीं रह जाती। किसी और की नहीं रह जाती । ऐसी अंतर्दृष्टि की कामना करता हूं, ऐसे विचार की ऐसी साधना की। मनुष्य के इस दुर्भाग्य को दूर करने की आत्मधारणा पैदा हो, आप में खयाल पैदा हो कि मनुष

य का यह दुर्भाग्य दुर हो सके। यह सामूहिक आत्मघात की जो तैयारी चलती है, िं
हसा और घृणा का यह जो विकास चलता है, वह प्रेम में परिवर्तित हो सके।
लेकिन यह प्रेम कोई जबरदस्ती आरोपित नहीं हो सकता कि आप सोचें कि हम प्रे
म करें या किसी से हम कहें कि तुम प्रेम करो तो उसका क्या मतलब होगा? और
इस भांति जो कोई प्रेम करेगा, वह प्रेम तो झूठा होगा, उसमें कोई सचाई नहीं हो
सकती। प्रेम किया हनीं जा सकता और जबरदस्ती उसे रोका नहीं जा सकता। प्रग
तम तो तब उपलब्ध होगा जब आप आनंद को उपलब्ध होंगे, जब आपके भीतर आ
नंद होगा, आपके बाहर प्रेम होगा। आनंद के फूल लगेंगे तो प्रेम की सुगंध आपसे फै
लनी शुरू हो जाएगी। वही सुगंध धार्मिक आदमी का लक्षण है। भीतर आनंद हो, ब
ाहर जीवन में सुगंध हो, प्रेम की सुगंध हो।
ईश्वर करे आपको भीतर आनंद उपलब्ध हो और बाहर प्रेम उपलब्ध हो जाए। उस
से हम जगत को और स्वयं को बदलने में और एक नयी मनुष्यता को जन्म देने में
समर्थ और सफल हो सकते हैं।
मेरी इन बातों को आपने प्रेम से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। अंत
में अपने भीतर बैठे हुए परमात्मा के लिए मेरे प्रणाम स्वीकार करें।
आलोक का दर्शन
प्रश्न—अस्पष्ट पेट रिकार्डिंग।
उत्तर—कोई दूसरा प्रश्न पूछें, वे तीनों एक ही हैं। एक ही बात पूछी गयी है, उसकी
मैं चर्चा कर लेता हूं। और सच में बहुत बातें पूछने को है भी नहीं। प्रश्न तो एक
ही है कि मनुष्य आनंद को कैसे खोजे? आत्मा को कैसे खोजे? सत्य को कैसे खोजे
? और मैंने आपसे कहा कि उस खोज का जो माध्यम है, वह निर्विचार होना है। स
माधि के माध्यम से सत्य का अनुभव होता है या आत्मा का अनुभव होता है।
समाधि का अर्थ है—सारे विचारों का शून्य हो जाना। ये विचार कैसे शून्य हों, इसके
दो रास्ते हैं। एक रास्ता तो यह है कि हम अपने भीतर विचार का पोषण न करें।
हम सारे लोग विचार का पोषण करते हैं और संग्रह करते हैं। सुबह से सांझ तक
हम विचार को इकट्ठा करते हैं और इकट्ठा करने में हम कभी यह भी ध्यान नहीं र
खते कि हम कचरा इकट्ठा कर रहे हैं, फिजूल का कचरा इकट्ठा कर रहे हैं या कोई
सार्थक बात भी इकट्ठी कर रहे हैं।
अगर मेरे घर में कोई कचरा फेंक जाए तो मैं झगड़ा करूंगा, लेकिन अगर कोई आ
दमी आकर दो घंटे मेरे दिमाग में कोई विचार फेंक जाए तो मैं कोई झगड़ा नहीं क
रता। दुनिया में एक दूसरे के मस्तिष्क में विचार फेंकने की पूरी स्वतंत्रता है। इससे
खतरनाक और कोई स्वतंत्रता नहीं हो सकती, क्योंकि मनुष्य का जितना घात ये वि
चार कर सकते हैं, उतना और कोई चीज नहीं कर सकती। हम इस भांति जाने अ
नजाने, बिलकुल, मूर्च्छित अवस्था में, विचारों को इकट्ठा करते रहते हैं। इन विचारों
की पर्त पर पर्त, हमारे भीतर, पूरे चेतन अचेतन मन पर इकट्ठी हो जाती है। उन
की इतनी गहरी दीवारें बन जाती हैं कि उनके भीतर प्रवेश करना मुश्किल हो जात

ा है। जब भी आप भीतर जाएंगे, वे ही विचार आपको मिल जाएंगे, आत्मा तक प हुंचना संभव नहीं होगा। ये विचार बीच में ही आपको रोक लेंगे, अंदर नहीं जाने दें गे। हर विचार अटकता है और रोकता है, क्योंकि विचार उलझा लेता है। जब भी आप अपने भीतर प्रवेश करेंगे, तभी कोई न कोई विचार आपको रोक लेगा, आप उसी के अनुसरण में लग जाएंगे। जब तक निर्विचार होने का आग्रह इसीलिए है कि जब तक आप निर्विचार न हो जाए तब तक भीतर गति नहीं हो सकती। आप बी च में जाएंगे, बाहर आ जाएंगे। वह विचार आपको बहुत दूर ले जाएगा। उसके एस ोसिसिएशन्स होंगे, वह आपको दूर ले जाएगा। आप वहीं भटक जाएंगे, आप पूरे भी तर प्रवेश नहीं कर पाएंगे। हर आदमी भीतर जाता है, जितना ज्यादा विचारवान अ ादमी होता है, विचार से भरा होता है, उतने बाहर से ही लौट आता है। जितना जल्दी कोई विचार उसको पकड़ लेता है, वह उतनी ही जल्दी वापस लौट आता है। ब्रिटिश विचारक डेविड ह्यूम ने सिखा है कि मैंने यह सुन कर कि भीतर प्रवेश कर ना चाहिए, बहुत बार भीतर प्रवेश करने की कोशिश की, लेकिन जब भी मैं भीतर गया, मुझे आत्मा तो नहीं मिली कोई विचार मिल जाता था, कोई कल्पना मिल जाती है, कोई स्मृति मिल जाती थी। आत्मा नहीं मिली। मैं बहुत बार भीतर गया, ये ही मुझे मिले। उसने ठीक लिखा है। उसका अनुभव गलत नहीं है। आप भी अप ने भीतर जाएंगे तो यही मिल जाएंगे और ये आपको बाहर ले जाएंगे। तो जिसको भीतर जाना हो, पूरे भीतर जाना हो, उसे बीच की इन सारी बाधाओं को अलग क र देना जरूरी है।

तो पहली बात यह है कि जिसे निर्विचार होना हो, उसे व्यर्थ के विचारों को लेना बंद कर देना चाहिए। उसकी सजगता उसके भीतर होनी चाहिए कि वह व्यर्थ के वि चारों का पोषण न करे, उन्हें अंगीकार न करे, उन्हें स्वीकार न करें और सचेत रहे कि भीतर विचार इकट्ठे न हो जाए। इसे करने के लिए जरूरी होगा कि विचारों में जितना भी रस हो, उसको छोड़ दें। हमें विचारों में बहुत रस आता है। अगर आप एक धर्म को मानते हैं तो उस धर्म के विचारों में जितना भी रस हो, उसको छोड़ दें। जिसे निर्विचार होना हो, उसे विचारों के प्रति विरस हो जाना चाहिए, उसे कि सी विचार में कोई रस नहीं रह जाना चाहिए। उसे यह सोचना चाहिए कि विचार से कोई प्रयोजन नहीं, इसलिए उसमें कोई रस रखने का कारण नहीं। कैसे वह विर स होगा, उन्होंने पूछा है कि कैसे यह संभव होगा?

यह संभव होगा विचारों के प्रति जागरूकता से। अगर हम अपने विचारों के साक्षी बन सकें और यह बन सकना कठिन नहीं है।अगर हम अपने विचारों की धारा को दूर खड़े होकर देखना शुरू करें तो क्रमशः जिस मात्रा में आपका साक्षी होना विकसि त होता है, उसी मात्रा में विचार शून्य होने लगता हैं।

बुद्ध का एक शिष्य था श्रोण। वह राजकुमार था। मुझे उसकी कथा इसलिए प्रिय र ही कि मैंने सारे मुल्क में बार-बार उसे कहा और मुझे उसके मुकाबले कोई भी बा त नहीं दिखाई पड़ती। वह राजकुमार था, वह दीक्षित होकर भिक्षु हो गया। पहले ि

दन जब वह भिक्षा मां ने जाने लगा तो बुद्ध ने उससे कहा कि अभी तुझे भिक्षा मां गने का ज्ञान नहीं। कल तक राजकुमार था, आज भिक्षा के पात्र को लेकर जाएगा। पता नहीं कैसा तुझे लगे, इसलिए मैंने अपनी एक श्राविका से कहा है कि जब तक तू भिक्षा के मांगने में निष्णात न हो जाए, तब तक भोजन वहीं कर लेना। अभी तू भिक्षा मत मांग, वहां जाकर भोजन कर आ।

वह राजकुमार श्रोण, जो कि संन्यासी हो गया था, उस भाविका के घर भोजन कर ने गया। कोई दो मील का फासला था, वह रास्ते भर बहुत बातें सोचने लगा। उसे खयाल आया उन भोजनों का, जो उसे प्रिय थे। उसने आज सोचा, आज पता नहीं कैसा अप्रिय भोजन मिले, कैसा अरुचिकर भोजन मिले, कैसा रूखा-सूखा मिले। उसे जो-जो प्रिय भोजन थे, वे सब स्मरण आए और यह भी खयाल आया कि उनके मि लने की संभावना इस जीवन में दुबारा नहीं है। लेकिन जब वह श्राविका के घर पहुं चा और भोजन के लिए बैठा तो देख कर हैरान हुआ कि उसकी थाली में वे ही भो जन थे, जो उसे प्रिय थे। उसे बड़ी हैरानी हुई, उसे बहुत अचंभा हुआ। फिर उसने सोचा, शायद यह संयोग की ही बात होगी कि आज ये भोजन बने हैं। उसने चुपचा प भोजन किया। जब वह भोजन कर रहा था, तो उसे यह खयाल आया कि अब य ह भोजन करने के बाद, फिर यह दो मील रास्ता दोपहरी में तय करना है। और अ ाज तक ऐसा मैंने कभी नहीं किया। भोजन के बाद मैं विश्राम करता था। अब वह श्राविका पंखा करती थी। उसने कहा, भंते! अगर भोजन के बाद थोड़ी देर विश्राम करें तो मुझ पर बड़ी कृपा होगी। वह फिर थोड़ा हैरान हुआ! उसे लगा कि मैंने सो चा था, संयोग की बात होगी, मैंने सोचा। उसी वक्त उसने एक चटाई डाल दी। ले टते ही उसे खयाल आया कि आज न अपनी कोई साया है, न कोई शैप्या है। वह श्राविका पीछे थी। उसने कहा, भंते! शैया तो न तो आपकी है, न मेरी है। न साया आपका है न मेरा है।

वह घबड़ा कर बैठ गया। उसने कहा, बात क्या है, क्या मेरे विचार पढ़ लिए जाते हैं? उस श्राविका ने कहा, ध्यान का अभ्यास करने से, पहले तो अपने विचार दिखा ई देने शुरू हुए, फिर अपने विचार समाप्त हुए। अब दूसरे के भी विचार दिखाई देने शुरू हो गए। वह उठकर बैठे गया। उसने कहा, अब जाऊं? उस श्राविका ने कहा, आप विश्राम करें, अभी न जाएं।

उसने जाकर बुद्ध से कहा कि मैं कल से उस श्राविका के यहां भोजन करने नहीं जा सकता। बुद्ध ने कहा, क्या बात है? वह युवक कहने लगा, बात! मेरा कोई अपमा न नहीं हुआ, बड़ा स्वागत हुआ, बहुत सम्मान हुआ, लेकिन मैं नहीं जाऊंगा। आप छोड़ दें उस बात को। उस श्राविका के यहां मैं नहीं जाऊंगा। बुद्ध ने कहा, बिना ज ाने मैं कैसे छोड़ सकता हूं? वह युवक बोला, जानने की बात यह है कि मैं उसके घर गया। वह विचार पढ़ने में समर्थ है और उस सुंदर युवती को देखकर मेरे मन में विकार और वासना भी उठी तो वह भी पढ़ ली गयी। अब मैं कल उसके द्वार प र कैसे जा सकता हूं। और कौन सा मुंह लेकर जाऊंगा?

बुद्ध ने कहा, मैंने जान कर तुझे वहां भेजा है। वही तुम्हारी साधना का हिस्सा है। कल भी तुम्हें वहीं जाना होगा और परसों भी तुम्हें वहीं जाना होगा। और उसके बाद के दिनों में भी तुमको जाना होगा, उस दिन तक, जब कि तुम उस द्वार से निर्विचार होकर न लौटो। मजबूरी थी, उस भिक्षु को वहां जाना पड़ा। बुद्ध ने कहा, एक स्मरण रखना, किसी विचार से लड़ना मत, किसी विचार से संघर्ष मत करना, किसी विचार के विरोध में खड़े मत होना। एक ही काम करना कि जब तू रास्ते से जाए तो अपने भीतर सजगता रखना और जो भी विचार उठते हों, उनको देखते जाना। सिर्फ देखते हुए जाना और कुछ भी मत करना। तुम्हारा निरीक्षण, तुम्हारा आब्जर्वेशन बना रहे, तुम देखते रहो। अनदेखा कोई विचार न उठे, बेहोशी में कोई विचार न उठे तुम्हारी आंख भीतर गड़ी रहे और तुम देखते रहो कि कौन से विचार उठ रहे हैं। सिर्फ निरीक्षण करना, लड़ना मत।

वह युवक गया। जैसे-जैसे उस महिला का द्वार करीब आने लगा, मकान करीब आने लगा, उसकी घबराहट और बेचैनी बढ़ने लगी। जैसे-जैसे बेचैनी बढ़ने लगी, वैसे-वैसे वह सजग होने लगा। वैसे-वैसे भय का बिंदु करीब आने लगा।जैसे-जैसे लगने लगा, वह महिला करीब ही होगी, जो पढ़ सकती है, वैसे-वैसे वह अपनी आंख को भीतर खोलने लगा।

जब वह सीढ़ियां चढ़ता था, उसने पहली सीढ़ी पर पैर रखा, उसने अपने भीतर देखा तो उसके भीतर कोई विचार नहीं। उसने दूसरी सीढ़ी पर पैर रखा, भीतर बिलकुल सन्नाटा मालूम पड़। उसने तीसरी सीढ़ी पर पैर रखा, उसे दिखाई पड़ा, अपने आर-पार देख रहा हूं, वह एकदम खाली पड़े हैं। वहां कोई विचार नहीं है। वह बहुत घबड़ाया। ऐसा उसने कभी अनुभव नहीं किया था कि बिलकुल विचार ही न हों और जब विचार बिलकुल न थे तो उसे ऐसा लगा जैसे हवा हो गया हो, हलका हो गया हो। वह गया और उसने भोजन किया। फिर नाचता हुआ वापस लौटा।

उसने बुद्ध के पैर पकड़ लिए। उसने बुद्ध से कहा--अदभुत अनुभव हुआ। जब मैं उसकी सीढ़ियों पर पहुंच कर भीतर बिलकुल सजग हो गया, सचेत हो गया, होश से भर गया तो मैं हैरान हो गया। एक भी विचार न था, सब विचार शून्य हो गए।

बुद्ध ने कहा, विचार से शून्य होने का उपाय, विचार के प्रति पूरा सजग होना है। जो व्यक्ति जितना सजग हो जाएगा, विचारों के प्रति उतने ही विचार, उसकी भांति उसके मन में नहीं आते, जैसे घर में दीया जलता हो तो चोर नहीं आते। घर में अंधकार हो तो चोर घर के अंदर आते हैं? भीतर जो होश को जगा लेता है, उतने ही विचार क्षीण हो जाते हैं। जितनी मूर्च्छा होती है भीतर, जितना सोयापन होता है भीतर, उतना ज्यादा विचारों का आक्रमण होता है। जितना जागरण होता है, उतने ही विचार क्षीण हो जाते हैं।

निर्विचार होने का उपाय है, विचारों के प्रति साक्षी भाव को साधना। कोई एक क्षण में सध जाएगा,यह मैं नहीं कहता, एक दिन में सध जाएगा, यह भी नहीं कहता। लेकिन अगर निरंतर प्रयास हो तो थोड़े ही दिनों में आपको पता चलेगा कि जैसे-जै

से आप विचारों को देखने लगेंगे—कभी घंटे भर को किसी एकांत कोने में बैठ जाए और कुछ भी करें? सिर्फ विचारों को देखें, कुछ भी न करें उनके साथ, कोई चेष्टा न करें? सिर्फ उन्हें देखें अगर तो देखते-देखते ही धीरे-धीरे आपको पता चलेगा कि वह कम हो रहे हैं। देखना जैसा-जैसे गहरा होगा, वैसे-वैसे वह बिंदु दिखाई पड़ेगा। जिस दिन देखना पूरा हो जाएगा, उस दिन आप अपने भीतर आर पार देख सकेंगे। जिस दिन आपकी आंख बंद होगी और आपकी दृष्टि पूरी की पूरी भीतर देख रही होगी, उस दिन आप पाएंगे, कोई विचार का कोलाहल नहीं, वे गए और जब वे चले गए होंगे उसी शांत क्षण से आपको एक अदभुत दृष्टि, अदभुत दर्शन, अदभुत आलोक का अनुभव होगा। वह अनुभव ही सत्य का दर्शन है और वही अनुभव स्वयं का दर्शन है।

स्वयं के माध्यम से ही सत्य को जाना जाता है। और कोई द्वार नहीं है। स्वयं के द्वा र से ही सत्य को जाना जाता है और सत्य को जान लेना, आनंद में प्रतिष्ठित हो जाना है। असत्य में होना दुख में होना है, अज्ञान में होना है। सत्य की उस ज्ञान द शा में आनंद उपलब्ध होता है। आनंद और आत्मा को अलग न समझें, आनंद और सत्य को अलग न समझें, स्वयं और सत्य को अलग न समझें। ऐसी प्रक्रिया का उप योग जो क्रमशः अपने जीवन में करेगा, वह कभी निर्विचार को अनुभव कर लेगा। ि नर्विचार को जो अनुभव कर लेता है, उसकी पूरी विचार की शक्ति जाग्रत हो जात ी है, उसे आंख मिल जाती है। जैसे किसी ने अंधेरे में प्रकाश कर दिया हो, जैसे ि कसी अंधे को आंख मिल जाती है, वैसा उसे अनुभव होता है।

प्रत्येक व्यक्ति अधिकारी है और हकदार है। जो अपने अधिकार को मांगेगा, उसे मि ल जाएगा। जो उसे छोड़ेगा, वह खो देगा।

आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं कि अगर हमें इंजीनियरिंग सीखनी हो, टेक्नालाजी स ीखनी हो तो हमें दूसरों के विचार स्वीकार करने होंगे। लेकिन अगर हमें प्रेम सीखन ा हो तो हमें दूसरों का विचार नहीं लेना होगा। टेक्नालाजी में और धर्म में यही अं तर है। जो चीज सीखी जा सकती है, वह पदार्थ से संबंधित है और जो चीज नहीं सीखी जा सकती है, वह पदार्थ नहीं है। परमात्मा को सीखा नहीं जा सकता, नहीं तो कोई स्कूल कालेज खोलने से मामला आसान हो जाता है।

इस बात को स्मरण रखिए कि साइंस सीखी जा सकती है। साइंस दूसरों के अनुभव का निचोड़ है, धर्म नहीं। धर्म अपना अनुभव है। यहां धर्म और साइंस बड़े विपरीत हैं। साइंस हमेशा परंपरा है, धर्म परंपरा नहीं है। साइंस वह है कि एक वैज्ञानिक दू सरे के कंधे पर खड़ा होता है। धर्म यह है कि अपने ही पैरों पर खड़ा होना चाहता है। न्यूटन को हटा दें तो आइंस्टीन को खड़े होने की जगह न रह जाएगी। महावीर , बुद्ध को हटा दें, फिर भी मैं खड़ा हो सकता हूं। धर्म निजी और वैयक्तिक अनुभ व है, साइंस सामाजिक अनुभव है। इसीलिए साइंस सीखी जाती है। उसके कालेज और विद्यालय हो सकते हैं। सत्य नहीं सीखा जा सकता। सत्य को स्वयं साधा जाता है। वह हमेशा निजी है। साइंस की दिशा अलग है, धर्म की दिशा अलग। मैं सोचत

ा हूं, समय नहीं है, अन्यथा मैं इस पर और विस्तार से बात करता। फिर भी मैं स
मझाता हूं, शायद मेरी बात थोड़ी बहुत साफ हो सकती है।
पूछा गया है कि जो आदमी विचार नहीं करते, क्या वे आत्मज्ञान और आनंद को
उपलब्ध होते हैं?
बहुत अच्छी बात पूछी है। निर्विचार होने में और विचारहीन होने में फर्क है। निर्वि
चार होने का अर्थ है, विचारों का स्वयं त्याग किया। निर्विचार होने से विचारहीन न
हीं हो जाते आप, परिपूर्ण विचार को उपलब्ध होते हैं। मैंने कहा, निर्विचारणा विचा
र शक्ति के परिपूर्ण जागरण का उपाय है। विचारहीन होने को नहीं कह रहा हूं, नि
र्विचार होने को कह रहा हूं। अविवेक के लिए नहीं कह रहा हूं, पूरा विवेक जगाने
के लिए कह रहा हूं। पशुओं में विचारणा नहीं है,वे विचार नहीं कर पाते। मनुष्यों
में विचार है, वे विचारहीनता को उपलब्ध होते हैं। इसलिए एकदम अबोध व्यक्ति
और परिपूर्ण आदमी में समानताएं होती हैं। एकदम अज्ञानी में और परम ज्ञानी में
समानताएं मालूम पड़ती हैं। और उनके दफा भूल हो जाती है। उसका कारण है कि
दो परिपूर्णताएं एक जगह जाकर मिलती हैं। वह भी अबोध मालूम होगा। परम ज्ञा
नी भी अबोध मालूम होता है, अत्यंत बोध के कारण। बहुत प्रकाश हो जाए तो आं
ख अंधी हो जाती है। अत्यधिक प्रकाश हो तो आंख बंद हो जाती है, बिलकुल प्रका
श न हो तो अंधकार हो जाता है।
लेकिन बहुत प्रकाश से पैदा हुआ जो अंधकार है, उसकी गरिमा अलग है। इसी भांि
त विचार से निर्विचार को उपलब्ध होना बहुत अलग बात है। वह विचारहीनता नह
ीं है, वह विचारशून्यता है।
प्रश्न—अस्पष्ट टेप रिकार्डिंग।
उत्तर—ध्यान से मेरा प्रयोजन चित्त की ऐसी स्थिति से हैं, जहां कोई शंका, जहां को
ई प्रश्न, जहां कोई जिज्ञासा शेष न रह जाए। हम जीवन सत्य के संबंध में कुछ न
कुछ पूछ रहे हैं। ऐसा मनुष्य निरंतर खोजना कठिन है, जो जीवन के सत्य के संबंध
में किसी जिज्ञासा को न लिए हो। न तो हमें इस बात का कोई ज्ञान है कि हम क
ौन हैं, न हमें इस बात का कोई ज्ञान है कि हमारे चारों ओर फैला जगत क्या है।
हम जीवन के बीच में अपने को पाते हैं, बिना किसी उत्तर के, बिना किसी समाधा
न के। चारों तरफ प्रश्न हैं और उनके बीच में मनुष्य अपने को घिरा हुआ पाता है।
इन प्रश्नों में कुछ तो अत्यंत जीवन की बुनियाद से संबंधित हैं, जैसे मैं क्यों हूं?
मेरी सत्ता क्यों है? मेरे होने की क्या आवश्यकता है? क्या अनिवार्यता है? और फि
र मैं कौन हूं? और मैं जन्म हूं या मैं मृत्यु हूं? जीवन का यह सारा व्यापार क्यों है
? यह जिज्ञासा, यह प्रश्न प्रत्येक व्यक्ति के मन में, चाहे वह किसी धर्म में पैदा हो,
चाहे किसी देश में पैदा हो, उठता है
हम जिज्ञासा को हल करने के दो रास्ते हो सकते हैं। एक रास्ता है फिलासफी या
तत्वज्ञान का कि हम सोचें और विचार करें कि हम कौन है, किस लिए हैं और जी
वन की पहेली के संबंध में चिंतन के माध्यम से समाधान खोजें। इस भांति जो समा

धान खोजा जाएगा, वह बौद्धिक होगा। विचार करके हम निर्णय करेंगे। पश्चिम ने वैसा रास्ता पकड़ा पश्चिम में फिलासफी का जन्म चिंतन के माध्यम से, विचार के माध्यम से, सत्य को जानने की चेष्टा से हुआ। भारत में फिलासफी जैसी कोई चीज पैदा नहीं हुई। जो लोग भारतीय दर्शन को भी फिलासफी कहते हैं, वह नितांत भूल में हैं। वह शब्द पर्यायवाची नहीं। पश्चिम में उन्होंने सोचा कि विचार के बाहर, हम सत्य के किसी निष्कर्ष पर पहुंच जाएंगे। पिछले ढाई हजार वर्षों में वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे। एक चिंतक दूसरे चिंतक से सहमत नहीं होता। एक चिंतक युवा अवस्था में जो कहता है, बुढ़ापे में स्वयं ही उसे बदल देता है। आज जो कहा गया, कल वह परिवर्तन हो जाता है। चिंतन शाश्वत और नित्य सत्य पर नहीं ले जा सका।

असल में विचार ले ही नहीं जा सकता है। विचार का अर्थ है हम उन बातों के संबंध में सोच रहे हैं जो अननोन हैं, अज्ञात हैं। जैसे मुझे प्रीतिकर लगता है, मैं कहूं, जैसे अंधा प्रकाश के संबंध में विचार करे। तो विचार करेगा क्या? आंख जिसके पास नहीं है, उसके पास प्रकाश के संबंध में विचार करने का कोई उपाय नहीं है। कोई धारणा, कोई केसेप्ट, वह प्रकाश काट नहीं बना सकता। उसका चिंतन सब अंधेरे में टटोलना हो जाएगा।

शायद आपको यह खयाल हो कि अंधे को कम से कम अंधेरा तो दीखता होगा। सोच सकता है, अंधेरे के विपरीत जो है, वह सत्य होगा। लेकिन आपको स्मरण दिलाऊं, अंधे को अंधेरा भी दिखता नहीं। अंधे को अंधेरा भी नहीं दीखता है, क्योंकि अंधेरा देखने के लिए भी आंख चाहिए। न अंधे को अंधेरे का पता है, न प्रकाश का पता। उसे विपरीत का भी पता नहीं है। इसलिए प्रकाश के संबंध में कोई धारणा बनाने की सुविधा उसे नहीं है।

जीवन के सत्य के प्रति हम लगभग अंधे हैं। हम जो भी सोचेंगे, जो भी विचार करेंगे, वह हमें किसी समाधान पर ले जाने वाला नहीं है। इसलिए भारत के एक बिलकुल नया दृष्टिकोण, एक नया द्वार खोलने की कोशिश की। वह द्वार चिंतन का नहीं, दर्शन का है। वह फिलासफी का नहीं, दर्शन का है। दर्शन का अर्थ है, हम सत्य को देखना चाहते हैं। विचारना और देखना ये दोनों बहुत अलग बातें हैं। हम सत्य को देखना चाहते हैं।

अगर देखना चाहते हैं तो प्रश्न की भूमिका बदल जाएगी। तब तर्क सहयोगी न होगा। चिंतन का सहयोगी है तर्क, लाजिक और अगर दर्शन देखना है तो तर्क सहयोगी न होगा। तब सहयोगी होगा योग। इसलिए पूरब में दर्शन के साथ योग विकसित हुआ, पश्चिम में फिलासफी के साथ तर्क विकसित हुआ। तर्क पृष्ठभूमि है चिंतन की, योग पृष्ठभूमि है दर्शन की। देखने तक अगर प्रश्न अटक गया तो सवाल यह नहीं है कि वहां ईश्वर या आत्मा जैसा कोई है। सवाल यह है कि मेरे पास उसके प्रति संवेदित होने को आंख तैयार नहीं है। असली सवाल तर्क का, सत्य का न होकर आंख का हो जाएगा। अगर मेरे पास आंख है तो जो भी है, उसे मैं देख सकूंगा और

अगर मेरे पास आंख नहीं है तो जो भी होगा, वह मेरे लिए अज्ञात हो जाएगा। इस लिए भारतीय दर्शन केंद्रित हो गया मनुष्य के भीतर, अंतर्चक्षु के विकास पर।

बुद्ध के जीवन में उल्लेख है—मौलुंकपुत्त नाम के एक युवक ने जाकर, बुद्ध से ग्यारह प्रश्न पूछे। उन ग्यारह प्रश्नों में जीवन के सारे प्रश्न आ जाते हैं। उन ग्यारह प्रश्नों में तत्व चिंतन जिन्हें सोचता है वे सारी समस्याएं आ जाती हैं। बहुत मीठा संवाद हुआ। मौलुंकपुत्त ने अपने प्रश्न पूछे। बुद्ध ने कहा, मेरी एक बात सुनोगे? छह मही ने, साल भर रुक सकते हो? साल भर प्रतीक्षा कर सकते हो? अच्छा हो कि साल भर मेरे पास रुक जाओ, साल भर बाद पूछ लेना, मैं तुम्हें उत्तर दे दूंगा। मौलुंकपु त्त ने कहा, अगर उत्तर आपको ज्ञात है तो अभी दे दें और अगर ज्ञात नहीं है तो स्पष्ट अपने अज्ञान को स्वीकार कर लें। मैं लौट जाऊं। साल भर आपको चिंतन कर ना होगा, तब आप उत्तर देंगे।

बुद्ध ने कहा, इससे पहले भी यह प्रश्न तुमने किसी से पूछे थे? मौलुंकपुत्त ने कहा—अनेक से, लेकिन उन सभी ने तत्काल उत्तर दे दिए थे। किसी ने यह नहीं कहा ि क इतने दिन रुक जाओ। बुद्ध ने कहा, अगर वे उत्तर उत्तर थे तो तुम अब भी उन् हीं प्रश्नों को क्यों पूछते चले जाते हो? अगर वे उत्तर वस्तुतः उत्तर बन गए होते तो अब तुम्हें दुबारा उन्हीं प्रश्नों को पूछने की जरूरत न रह जाती। इतना तो निश्चि चत है कि तुम फिर उन्हीं को पूछ रहे हो। जो उत्तर तुम्हें दिए गए, वे उत्तर साबि त नहीं हुए। मैं भी तुम्हें तत्काल उत्तर दे सकता हूं, लेकिन वे उत्तर व्यर्थ हैं। अस ल में, किसी भी दूसरे से दिए गए उत्तर व्यर्थ होंगे। उत्तर तुममें पैदा होने चाहिए। इसलिए मैं कह रहा हूं कि वर्ष भर रुक जाओ।

बुद्ध का एक शिष्य था, आनंद। वह यह बात सुनकर हंसने लगा। उसने मौलुंकपुत्त से कहा कि तुम इनकी बातों में मत आना। मैं बीस वर्षों से इनके निकट हूं। अनेक लोग आए और उन अनेक लोगों ने उनके प्रश्न पूछे। बुद्ध सबसे यही कहते हैं, एक वर्ष रुक जाओ, दो वर्ष रुक जाओ। मैं प्रतीक्षा करता रहा। वर्ष भर बाद, दो वर्ष बाद, वह पूछेंगे और हमें बुद्ध से उत्तर ज्ञात हो सकेंगे। लेकिन न मालूम क्या होता है, वर्ष भर बाद, दो वर्ष बाद, लोग पूछते नहीं और आज तक पता नहीं चल पा या कि बुद्ध के उत्तर क्या हैं। इसलिए अगर पूछना हो तो अभी पूछ लो, नहीं तो वर्ष भर बाद तुम पूछोगे ही नहीं।

बुद्ध ने कहा—मैं अपने वचन पर दृढ़ रहूंगा। तुम पूछोगे तो उत्तर दूंगा। तुम पूछो ही न तो बात अलग है। मौलुंकपुत्त वर्ष भर रुका। वर्ष भर बाद बुद्ध ने कहा, पूछते हो? वह हंसने लगा। वह बोला, अब पूछने की कोई जरूरत नहीं।

भारत की पूरी की पूरी जो पकड़ है, जो एप्रोच है सत्य के प्रति, वह बाहर से उत्त र उपलब्ध करने की नहीं, भीतर द्वार खोलने की है। उस द्वार के खुलने पर, प्रश्नों के पर्टिकुलर उत्तर मिलते हैं ऐसा नहीं, असल में प्रश्न गिर जात हैं। प्रश्नों का उत्त र मिलना एक बात है और प्रश्नों का गिर जाना, बिलकुल दूसरी भूमिका की बात है। उत्तर का मिलना महत्वपूर्ण नहीं है, प्रश्न का गिर जाना महत्वपूर्ण है। हमारे मुल

क के लंबे यौगिक प्रयोगों ने कुछ निष्कर्ष दिए हैं। उनमें से एक निष्कर्ष यह है कि प्रश्न हमारे अशांत चित्त की उत्पत्ति है। चित्त शांत हो जाए तो प्रश्न उत्पन्न नहीं ह ोता। समस्त प्रश्न हमारे अशांत, अद्विग्न चित्त की उत्पत्ति हैं। ईश्वर के संबंध में, ज न्म के संबंध में, मृत्यु के संबंध में, समस्त प्रश्न, मात्र अशांत चित्त की उत्पत्ति हैं। चित्त शांत हो जाए तो प्रश्न विसर्जित हो जाते हैं। निष्प्रश्न हो जाना ज्ञान को उपल ब्ध हो जाना है। प्रश्नों के उत्तर पा लेना पांडित्य को उपलब्ध होना है, निष्प्रश्न हो जाना, ज्ञान को उपलब्ध हो जाना है। प्रश्नों के बहुत उत्तर याद कर लेना बौद्धिक है, प्रश्नों का विसर्जन आत्मिक है।

जिसे मैं ध्यान कह रहा हूं, उससे प्रश्नों का कोई विशेष उत्तर नहीं मिलेगा, क्रमशः धीरे-धीरे प्रश्न विसर्जित हो जाएंगे। एक निष्प्रश्न चित्त की स्थिति बनेगी, वही समा धान है, वही समाधि है। जहां कोई प्रश्न खोजने से न उठे, जहां जीवन के प्रति को ई जिज्ञासा जाग्रत न हो, जहां कोई उद्विग्नता, जहां कुछ अज्ञान सा प्रतीत न हो, ज हां कुछ मुझे जानना है—ऐसी उत्तेजना शेष न रह जाए, उसी क्षण, प्रश्नों के गिर ज ाने की निश्शंक, निस्संदिग्ध हो जाने की इसी स्थिति में सत्य का साक्षात होता है। प्रश्नों के होने पर सत्य खोजा नहीं जा सकता, प्रश्नों के गिर जाने पर सत्य प्रकट ह ोता है। इसीलिए हम समाधि को समाधान कहते हैं।

समाधि का अर्थ ही समाधान है। यह समाधान कोई दूसरा व्यक्ति किसी को दे सक ता है? अगर कोई ऐसा कहता हो तो वह वंचना कर रहा है। यह समाधान कोई दू सरा आपको दे सकता है, ऐसा कोई दावा करता हो तो वह आपको अज्ञान की पो षण कर रहा है। कोई भी दावा करता हो—कोई पैगंबर, कोई तीर्थंकर, कोई अवता र अगर यह दावा करे—कि यह ज्ञान में आपको दे सकता हूं तो वह धोखे की बात कर रहा है, वह केवल आपके अज्ञान का पोषण कर रहा है, उस सत्य का ज्ञान नह ीं है। इसलिए कोई तीर्थंकर, कोई अवतार, कोई पैगंबर यह दावा नहीं करता है कि मैं आपको ज्ञान दे सकता हूं। वह केवल इतना कह सकता है कि मुझे ज्ञान कैसे उ पलब्ध हुआ, उसकी विधि की मैं चर्चा कर सकता हूं। जिनको ठीक प्रतीत हो वे उ सका उपयोग कर लें।

ज्ञान दिया नहीं जा सकता। मैं कैसे ज्ञान तक पहुंचा, इसकी विधि की चर्चा की जा सकती है। सत्य नहीं दिया जा सकता सत्य का अतः साक्षात कैसे हुआ, उस कैसे का उत्तर दिया जा सकता है। सत्य क्या है इसका उत्तर नहीं, सत्य का कैसे साक्षा त हुआ इसका उत्तर दिया जा सकता है। जो क्या का उत्तर देते हैं उपलब्धि पर वे चिंतक हैं, जो कैसे का उत्तर देते हैं, वे योगी हैं।योग कैसे का उत्तर है। अंतर्चक्षु कैसे खुल सकते हैं और जो भी सत्ता है, उसके हम आमने सामने कैसे खड़े हो सक ते हैं? उस सत्ता से एंकाउंटर कैसे हो सकता है? उस सत्ता से साक्षात कैसे हो सक ता है? अगर यह बात समझ में आ जाए तो प्रश्न खोजने और उत्तर खोजने की दि शा व्यर्थ हो जाएगी। तब प्रश्न को विसर्जित करने की दिशा सार्थक होगी।

जिसको मैं ध्यान कह रहा हूं, वह प्रश्नों को विसर्जित करने की दिशा है। प्रश्न है, क्योंकि विचार है। प्रश्न है, क्योंकि चित्त में विचार हैं। अगर विचार न रह जाए तो प्रश्न भी नहीं रह जाएंगे। निर्विचार चित्त में कौन सा प्रश्न उठेगा और कैसे उठेगा? प्रश्न का ढांचा तो विचार से बंधा है। अगर विचार शून्य हो जाए चित्त में तो कोई प्रश्न न उठेगा, कोई जिज्ञासा जाग्रत न होगी।

उस शांत क्षण में, जहां कोई जिज्ञासा, कोई प्रश्न नहीं उठ रहा, कुछ अनुभव होगा। जहां विचार नहीं रह जाते, वहां अनुभव का कारण होता है। जहां तक विचार हैं, वहां तक अनुभव का कारण नहीं होता। जहां विचार निःशेष हो जाते हैं, वहां भाव का जागरण होता है, वहां दर्शन का प्रारंभ होता है। विचार पर्दे की तरह हमारे चित्त को घेरे हुए हैं। विचार में हम इतने तल्लीन हैं, इतने आकुपाइड हैं, इतने व्यवस्था हैं कि विचार के अतिरिक्त जो पीछे खड़ा है, उसे देखने का अंतराल, उसे देखने का रिक्त स्थान नहीं मिलता। विचार में अत्यंत आकुपाइड होने, अत्यंत व्यस्त होने, अत्यंत संलग्न होने के कारण पूरा जीवन उन्हीं में चिंतन रहते हुए बीत जाता है। उनके पार कौन खड़ा है, इसकी झलक भी नहीं मिलती। इसलिए ध्यान का अर्थ है, पूरी तरह अनआकुपाइड हो जाना, व्यस्तता से रहित हो जाना।

तो हम अरिहंत-अरिहंत का स्मरण करें, राम-राम का स्मरण करें तो वह तो आकुपेशन ही होगा। वह तो फिर एक व्यस्तता हो जाएगी। वह तो एक काम हो गया। अगर हम कृष्ण की मूर्ति या महावीर की मूर्ति का स्मरण करें, उनके रूप का स्मरण करें तो वह भी व्यस्तता है।वह ध्यान नहीं होगा। कोई नाम, कोई रूप, कोई प्रतिमा, अगर हम चित्त में स्थापित करें तो वह भी विचार हो गया, क्योंकि विचार के सिवाय चित्त में कुछ और स्थिर नहीं होता। चाहे वह विचार भगवान का हो, चाहे सामान्य काम का हो, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। चित्त विचार से भरता है। चित्त को निर्विचार, चित्त को अनआकुपाइड छोड़ देना ही ध्यान है।

पिछली बार जब मैं आया था, तब मैंने एक जापानी साधु के बाबत आपको कहा था संभवतः। रिंझाई नाम का वहां एक साधु हुआ। उसके आश्रम को देखने, जापान का बादशाह एक दफा गया। बड़ा आश्रम था, उसमें कोई पांच सौ भिक्षु थे। वह साधु एक-एक स्थान को दिखाता हुआ घूमा कि यहां साधु भोजन करते हैं, यहां निवास करते हैं, यहां अध्ययन करते हैं। सार आश्रम के बीच में एक बहुत बड़ा भवन था। सबसे सुंदर, सबसे शांत, सबसे विशाल। वह राजा बार-बार पूछने लगा, और यहां साधु क्या करते हैं? वह कहने लगा, वहां के विषय में बाद में बात करेंगे। बगीचा, लाइब्रेरी, अध्ययनकक्ष, सब बताता है। राजा बार-बार पूछने लगा और यहां साधु क्या करते हैं, यह जो बीच में भवन है? साधु बोला, थोड़ा ठहर जाएं। उसके संबंध में बाद में बात कर लेंगे। जब पूरा आश्रम घूम कर, राजा वापस होने लगा तब उसने दुबारा पूछा, यह बीच का भवन तो छूट ही गया, यहां साधु क्या करते हैं? आश्रम के प्रधान ने कहा, उसको बताने को, इसलिए मैं रुका कि वहां साधु कुछ करते नहीं। वहां साधु अपने को न करने की स्थिति में छोड़ते हैं। वह ध्यान कक्ष है।

वहां कुछ करते ही नहीं है। बाकी पूरे आश्रम में काम हाता है, केवल वहां काम छो. डा जाता है। बाकी पूरे आश्रम में क्रियाएं होती हैं, वहां क्रियाएं नहीं की जातीं। जब किसी को क्रिया छोड़नी होती है तो वहां चला जाता है, सारी क्रियाएं छोड़ कर चु प हो जाता है।

ध्यान अक्रिया है, कोई क्रिया नहीं है कि हम सोचें कि वहां कोई काम है कि हम बै ठे हैं और काम कर रहे हैं। अगर काम कर रहे हैं तो वह ध्यान नहीं है। ध्यान का अर्थ है जो निरंतर काम चल रहा है चित्त में, उसको विराम दे देना। कोई काम न हीं करना है। चित्त को बिलकुल क्रिया शून्य छोड़ देना है। चित्त की क्रिया शून्य स्थि ति में क्या होगा? क्रिया शून्य स्थिति में भीतर कुछ होगा, केवल दर्शन रह जाएगा, केवल देखना रह जाएगा। इस स्थिति में जो हमारा भाव है, वही केवल रह जाएगा। दर्शन ज्ञान हमारा स्वभाव है। हम सब छोड़ सकते हैं, ध्यान और दर्शन नहीं छोड़ सकते। सतत चौबीस घंटे, ज्ञान हमारे साथ मौजूद है। जब गहरी नींद में सोते हैं, तब भी स्वप्न का हमें पता होता है। जब स्वप्न भी विलीन हो जाते हैं और सुषुप्ति होती है, तब भी हमें इस बात का पता होता है कि बहुत आनंदपूर्ण निद्रा है। सुबह उठकर हम कहते हैं, रात्रि बहुत आनंद से बीत। कोई हमारे भीतर उस समय भी चैतन्य है । उठते-उठते, सोते जागते, काम करते, न काम करते हमारे भीतर एक सतत अविच्छन्न ज्ञान का प्रवाह बना हुआ है। समस्त क्रियाएं छोड़ देने पर केवल ज्ञान का अविच्छिन्न प्रवाह मात्र शेष रह जाएगा। सिर्फ जान रहा हूं, सिर्फ हूं, बोध मात्र होने का, सत्ता का बोध मात्र शेष रह जाएगा। उसी बोध मग, उसी सत्ता मात्र में छलांग लगाना धर्म है। उसी में कूद जाना–उसी अस्तित्व में धर्म है और वहां ज ो अनुभूति होती है वह जीवन के बंधन से जीवन की आसक्ति से, जीवन के दुख से मुक्ति दे देती है, क्योंकि वहां जाकर ज्ञात होता है कि वह जो अंतर्सत्ता भीतर बैठ ी हुई है, वह निरंतर पाप से दुख से, पीड़ा से मुक्त है। एक क्षण को भी उस पर कभी पाप का, पीड़ा का, दुख का कोई दाग नहीं लगता। वह चैतन्य नित्य शांत, ि नत्य मुक्त है। वह चैतन्य नित्य ब्रह्म स्थिति में है। उस चैतन्य में कभी कोई विकार नहीं हुआ, न होने की संभावना है।जैसे ही यह दर्शन होता है, जीवन एक अलौकि क धरातल पर आनंद की अनुभूति के प्रति उन्मुख हो जाता है। इस उन्मुखता को मैं ध्यान और समाधि कहता हूं।

मैंने दो बातें कहीं, अव्यस्त (अनआकुपाइड) और अक्रिया असल में दोनों का एक ही अर्थ है। दोनों को एक शब्द में कहें–तो परिपूर्ण शून्यता ध्यान है। यह परिपूर्ण शून् यता, व्यक्ति अगर लाना चाहे तो मेरी समझ में उसे तीन अंगों पर अपने प्रयोग क रना होता है। प्राथमिक रूप से उसका शरीर है। अगर उसे अक्रिया में जाना है, निष्ि क्रयता में जाना है तो शरीर को अक्रिय छोड़ना होगा। शरीर को बिलकुल निष्क्रिय छोड़ना होगा, जैसे कि मृत्यु में शरीर छूट जाता है। उतना ही निष्क्रिय छोड़ देना हो ता है, ताकि शरीर पर जितने भी तनाव, जितने भी टेन्शन्स हैं, वे सब शांत हो जा ए।

यह तो आपने अनुभव किया होगा कि शरीर पर अगर कहीं भी तनाव हो, पैर में अगर दर्द हो तो चित्त बार-बार उसी दर्द की तरफ जाता है। चित्त में कहीं कोई त नाव न हो तो वह शरीर की तरफ जाता ही नहीं। आपको शरीर में केवल उन्हीं अं गों का पता चलता है, जो बीमार होते हैं। जो अंग स्वस्थ होते हैं, उनका पता नहीं चलता। अगर आपके सिर में दर्द है तो आपको पता चलेगा कि सिर है। अगर दर्द नहीं है तो सिर का पता नहीं चलेगा। शरीर जहां-जहां तनावग्रस्त होता है, वहीं-व हीं उसका बोध होता है। शरीर अगर बिलकुल तनाव शून्य हो तो उसका पता नहीं चलता।

तो शरीर को इतना शिथिल छोड़ देना है कि उसके सारे तनाव विलीन हो जाए तो थोड़ी देर में देह बोध विलीन हो जाता है। थोड़ी देर में देह है या नहीं है, यह बा त विलीन हो जाती है। थोड़े ही दिनों के प्रयोग से देह बोध विसर्जित हो जाता है। शरीर का परिपूर्ण तनाव शून्य होना, शरीर को ढीला छोड़ देते हैं। अभी आज प्रयोग के लिए बैठेंगे। शरीर को उस समय बिलकुल ढीला छोड़ देना है, जैसे मुर्दा हो गय ा, जैसे उसमें कोई प्राण नहीं हैं। उसमें कोई कड़ापन, कोई तनाव कोई अकड़ काय म नहीं रखनी है, सब छोड़ देना है।इतना ढीला छोड़ देना है, जैसे मिट्टी का लोंदा है, हमारी कोई पकड़ ही नहीं है, इसमें कोई जान ही नहीं है। अपने ही शरीर को ि बलकुल मुर्दे की भांति छोड़ देना है। जब शरीर को बिलकुल शिथिल छोड़ देंगे, उस के बाद मैं दो मिनट तक आपके सहयोग कि के लिए सुझाव दूंगा, सजेशंस दूंगा कि आपका शरीर शिथिल होता जा रहा है। मेरे दो मिनट निरंतर कहने पर कि शरीर शिथिल होता जा रहा है, आपको भाव करना है कि शरीर शिथिल हो रहा है। सि र्फ यह भाव मात्र करना है कि शरीर शिथिल हो रहा है। आप हैरान होंगे, भाव की इतनी शक्ति है कि अगर आप संकल्पपूर्वक भाव करें तो प्राण तक छूट सकते हैं। जिसको भारत में, इच्छा मरण कहते हैं, वह भाव मात्र है। अगर आप ठीक से भाव करें तो शरीर वैसा ही हो जाएगा।

रामकृष्ण के विषय में एक उल्लेख है। रामकृष्ण ने सारे धर्मों की साधना की। इस तरह की साधना करने वाले जगत में वह पहले साधु थे। दूसरे साधु जगत में ढेरों हुए हैं, वह अपने धर्म की साधना करके सत्य को पा लेते हैं। रामकृष्ण को लगा कि और धर्मों की साधनाएं सत्य तक ले जाती हैं या नहीं, अतः उन्होंने सारे धर्मों की साधनाएं की और उन्होंने कहा कि हर धर्म की साधना सत्य तक ले जाती है।

बंगाल में एक संप्रदाय प्रचलित है—राधा संप्रदाय। उसकी भी साधना उन्होंने की। रा धा संप्रदाय की मान्यता है कि केवल परम ब्रह्म ही पुरुष है, शेष सारे लोग नारियां हैं, राधाएं हैं। पुरुष भी उस संप्रदाय का, अपने को परम चैतन्य ब्रह्म की पत्नी के ही रूप में स्वीकार करता है। वह यही भाव करता है कि हम परम चैतन्य की नारी है। रामकृष्ण ने उसकी भी साधना की।

आप हैरान होंगे, रामकृष्ण ने तीन दिन यह भाव किया कि वह राधा हैं और उन प र स्त्री के सारे लक्षण प्रकट हो गए। उनकी वाणी बदल गयी, उनके बोलने का ढंग

बदल गया, उनके अंदर में भी परिवर्तन आया। इसे लोगों ने आंखों से देखा। लोग है रान हो गए कि यह क्या हुआ। राधा संप्रदाय के तो ढेर सारे लोग हैं, उन्हें दोहराते भी हैं।लेकिन रामकृष्ण में पहली दफा, इन लोगों ने साक्षात किया कि उनमें स्त्री के सारे लक्षण प्रकट हो गए हैं। तीन दिन की निरंतर इस भावस्थिति ने कि वह रा धा हैं, उन्हें राधा की परिणति दे दी। उन लक्षणों के जाने में छह महीने लगे। अभी पश्चिम में, पूरब के और बहुत से मुल्कों में ढेर सारा काम हो रहा है। हम जैसा भाव करें, शरीर में वैसी परिणतियां हो जाती है। अगर हम ठीक से भाव करें कि शरीर शिथिल हो रहा है, परिपूर्ण चित्त से भाव करें, पूर्ण समग्र चित्त से भाव करें कि शरीर शिथिल हो रहा है तो दो मिट में आप पाएंगे कि शरीर मृत हो गया। इस में कोई प्राण नहीं है। ऐसी स्थिति में अगर शरीर गिरने लगे तो उसे रोकना नहीं। और अच्छा हो कि जरा भी उसे न रोकें, उसे बिलकुल गिर जाने दें। उसके बाद दो मिनट तक भाव करना है कि श्वास शांत हो रही है। मैं दोहराऊंगा कि श्वास शांत हो रही है। दो मिनट तक आपको भाव करना है कि श्वास शांत हो रही है। अगर हमें परिपूर्ण शून्यता में जाना है तो शरीर का शिथिल होना अनिवार्य है, श्वास का शांत होना अनिवार्य है। दो मिनिट भाव करने में श्वास शांत हो जाती है। उसके बाद मैं दो मिनट कहूंगा कि चित्त, मन मौन हो रहा है, विचार शून्य हो रहे हैं। दो मिनट तक भाव करने पर विचार शून्य हो जाते हैं। छह मिनट की इस छोटी सी प्रक्रिया में अचानक आप पाएंगे कि रिक्त स्थान में, एक अवकाश में, एक शून्य में प्रवेश हो गया। चित्त मौन हो जाएगा। भीतर वाणी और शब्दों का उठना विलीन हो जाएगा। भीतर एक रिक्त स्थान, खाली जगह रह जाएगी, जहां कुछ भी नहीं है। न कोई विचार है, न कोई रूप है, न कोई आकृति है, न कोई ग्रंथ है, न कोई ध्वनि है। जहां कुछ भी नहीं है, केवल अकेले आप रह गए। उस अकेलेपन को, उस लोनलीनेस को जहां अकेला मैं रहा गया, चारों तरफ रिक्त आकाश से घिरा हुआ, उस अकेलेपन में ही उस स्व का अनुभव अदभुत होता है जिसको महावीर ने आत मा कहा है, जिसको शंकर ने ब्रह्म कहा है या जिसको और लोगों ने और नाम दिए हैं।

उस सत्य का अनुभव अत्यंत एकाकीपन में होता है। एकाकीपन की हम तलाश करते हैं, जंगल में भागकर, पहाड़ों पर भागकर। लेकिन एकाकीपन का संबंध स्थान से नहीं है, स्थिति से है। अकेलापन जंगल में जाकर नहीं खोजा जा सकता। वहां जो पशु पक्षी होंगे, उनसे ही मेल-जोल हो जाएगा, उनसे ही संगी साथीपन बन जाएगा। अकेलापन अपने में जाकर पाया जाता है, जहां जाकर सब रिक्त हो जाए और मैं बिलकुल अकेला रह जाऊं। उस अकेली स्थिति में, उस नितांत एकाकी स्थिति में, जहां केवल होने मात्र की स्पंदन रह गयी, वहां कुछ अनुभव होता है, जो जीवन में क्रांति ला देता है। उसके लिए यह अत्यंत छोटा सा सरल प्रयोग है। यह प्रयोग इतना छोटा सा है कि कई दफा लग सकता है कि इतने से प्रयोग से कैसे आनंद से साक्षात्कार हो सकता है। लेकिन बीज हमेशा छोटे होते हैं। परिणाम में वृक्ष विराट हो

जाते हैं। जो बीज को छोटा समझ कर यह भाव कर ले कि इससे क्या वृक्ष होगा, वह वृक्ष से वंचित हो जाएगा। बीज हमेशा छोटे होते हैं, परिणाम में विराट उपलब्ध होता है। अत्यंत सूक्ष्म सा बीज, ध्यान का होने पर विराट अनुभूति की फसल को काटा जा सकता है।

मेरी बात आप समझ गए हों। अभी तीन चरण में हम ध्यान के लिए जाते हैं। सब लोग इस समय दूर बैठेंगे ताकि गिरने की सुविधा हो। सारे लोग थोड़े फासले पर बैठ जाए और काफी गौर से देख लें कि गिरने की सुविधा हो। कल कुछ असुविधा हुई थी। आंख बंद कर लें। दोनों हाथ जोड़ कर संकल्प कर लें। अब हाथ छोड़ दें और जैसा मैं सुझाव देता हूं, वैसा भाव करें। पहले हम शरीर के शिथिल होने का भाव करेंगे, फिर श्वास शांत होने का भाव करेंगे और इसके बाद मन के मौन का भाव करेंगे। अंत में दस मिनट के लिए परिपूर्ण विश्राम में चले जाएंगे।

एक सीधा सत्य

एक धर्म गुरु ने एक रात एक सपना देखा। सपने में उसने देखा कि वह स्वर्ग के द्वार पर पहुंच गया है। जीवनभर उस स्वर्ग की ही बातें की थीं और जीवनभर स्वर्ग का रास्ता क्या है, यह लोगों को बताया था। उसे निश्चित था कि जब मैं स्वर्ग के द्वार पर पहुंचूंगा तो स्वयं परमात्मा मेरे स्वागत को तैयार रहेंगे। लेकिन वहां द्वार पर तो कोई भी नहीं था। द्वार खुला भी नहीं था, बंद था। द्वार इतना बड़ा था कि उसके ओर छोर को देख पाना संभव नहीं था। उस विशाल द्वार के समक्ष खड़े होकर, वह एक छोटी चींटी जैसा मालूम होने लगा। उसके द्वार को बहुत खटखटाया, लेकिन उस विशाल द्वार पर, उस छोटे से आदमी की आवाजें भी पैदा हुई या नहीं, इसका पता चलना तक कठिन था। वह बहुत डर गया।

निरंतर उसने यही कहा था कि परमात्मा ने, अपनी ही शक्ल में, आदमी को बनाया और आज इस विराट द्वार के समक्ष, खड़े होकर वह इतना छोटा मालूम होने लगा। बहुत चिल्लाने, बहुत द्वार पीटने पर, द्वार से कोई एक छोटी खिड़की खुली और किसी ने झांका। जिसने झांका था, उसकी हजार आंखें होंगी और इतनी तेज रोशनी थी उन आंखों की कि वह धर्मगुरु दीवाल के एक छोटे से कोने में सरक गया। इतना डर गया और चिल्लाया कि आप कृपा कर चेहरा भीतर रखें। हे परमात्मा! आप चेहरा भीतर रखें, मैं बहुत डर गया हूं। उस हजार आंखों वाले व्यक्ति ने कहा, मैं परमात्मा नहीं हूं, मैं तो यहां का पहरेदार हूं, द्वारपाल हूं। तुम कहां हो? मुझे दिखाई नहीं पड़ते, तुम कितने छोटे हो और कहां छिप गए हो। उस धर्मगुरु ने चिल्लाकर कहा कि मैं परमात्मा के दर्शन करना चाहता हूं और स्वर्ग में प्रवेश पाना चाहता हूं। उस द्वारपाल ने पूछा, तुम हो कौन और कहां से आए हो? उसने कहा, क्या आपको पता नहीं? मैं एक धर्मगुरु हूं और पृथ्वी से आ रहा हूं। उस हजार आंखों वाले आदमी ने कहा, पृथ्वी! यह कहां है? यह धर्मगुरु हैरान हुआ, कहा, तुम्हें पृथ्वी का भी पता नहीं? उस हजार आंखों वाले ने कहा कि किसी यूनिवर्स में? तुम किस

विश्व की, पृथ्वी की बात कर रहे हो? करोड़ों यूनिवर्स हैं, करोड़ों विश्व हैं। प्रत्येक विश्व के करोड़ों सूरज हैं, प्रत्येक सूरज की अपनी पृथ्वीयां हैं। तुम किसी पृथ्वी की बात करते हो? क्या नंबर है तुम्हारी पृथ्वी का, क्या इंडेक्स नंबर है? उसे तो कुछ पता नहीं था। उसने कहा कि हम तो एक ही विश्व को जानते हैं और एक ही सूरज को। और हमने इसलिए उनका कोई नाम नहीं रखा, कोई नंबर नहीं रखा। उस पहरेदार ने कहा, तब बहुत मुश्किल है पता लगाना कि तुम कहां से आ रहे हो। पहली बार ही इस द्वार पर पृथ्वी का नाम सुना गया है और मनुष्य शब्द भी पहली बार ही मेरे कानों में पड़ा है।
उस धर्मगुरु के तो प्राण बैठ गए, सोचा था, परमात्मा द्वार पर स्वागत को मिलेंगे। यहां तो इसका भी कोई पता नहीं है कि जिस पृथ्वी से वह आ रहा है वह कहां है।

फिर भी उस पहरेदार ने कहा, तुम निश्चित रहो, मैं अभी पूछताछ करवाता हूं। थोड़ा समय तो लग जाएगा, उस भवन में खोज करवाता हूं कि तुम किस पृथ्वी की बातें करते हो, जहां सारी पृथ्वियों के संबंध में, हमारे पास आंकड़े इकट्ठे हैं, नक्शे हैं, लेकिन कुछ महीने लग जाएंगे। इसके पहले तो पता लगना कठिन है कि तुम कहां से आते हो, किस जाति के हो और तुम्हारा यहां आने का क्या प्रयोजन है। उसने कहा कि मैं परमात्मा के दर्शन करना चाहता हूं। उस पहरेदार ने कहा, अनंत वर्ष हो गए, मुझे इस द्वार पर। अभी तो मैं भी परमात्मा के दर्शन नहीं कर पाया। और अब तक मैं ऐसे व्यक्ति से भी हनीं मिला हूं, इस स्वर्ग के द्वार पर, जिसने परमात्मा के दर्शन किए हों। परमात्मा की पूरी सृष्टि को ही जान लेना कठिन है। परमात्मा का जानना तो और भी कठिन है। वह तो समग्रता का ही नाम है।
घबराहट में उस धर्मगुरु की नींद टूट गयी। वह पसीने से लथपथ था। घबरा गया था। फिर रातभर उसे नींद नहीं आ सकी। वह बार-बार यही सोचता रहा कि कहीं मनुष्य ने, अपने अहंकार के ही प्रभाव में तो यह सारी बातें नहीं सोच ली हैं कि परमात्मा ने आदमी को अपनी ही शक्ल में बनाया और परमात्मा आदमी से मिलने को उत्सुक है, पुकार रहा है और स्वर्ग के द्वार और मोक्ष यह कहीं मनुष्य ने अपने ही मन की कल्पनाएं तो नहीं खड़ी कर ली हैं?
इसी कहानी से, इसलिए मैं शुरू करना चाहता हूं, धर्मगुरु के इस सपने से कि आदमी एक बहुत बड़े भ्रम लोक में जीता है। वह स्वयं को न जाने क्या-क्या समझ लेता है, जब कि इस विराट विश्व के किसी कोने में, उसका कोई अस्तित्व नहीं है। इस विश्व की विराटता को हम अनुभव करें और फिर उसके सामने अपने को खड़ा करें तो हम कहां रह जाते हैं, हम कहां हैं? यह पृथ्वी बहुत छोटी है। हमारा सूरज इस पृथ्वी से साठ हजार गुना बड़ा है। और यह सूरज, जितने सूरज हम जानते हैं, उनमें सबसे छोटा है। और कोई दो अरब सूरज जान लिए गए हैं और प्रत्येक सूरज का अपना विस्तार है। ये दो अरब सूरज ही समाप्ति नहीं हैं, उनके आगे भी विश्व होगा, उसके आगे भी विस्तार होगा, उसके आगे भी फैलाव होगा। इतने अनंत ि

वश्व के एक छोटी सी पृथ्वी के कोने पर, छोटा सा प्राणी है मनुष्य। उसकी भी को ई बहुत बड़ी संख्या नहीं है। कोई साढ़े तीन अरब उसकी संख्या है। अगर हम और प्राणियों की संख्या के हिसाब से विचार करेंगे तो पाएंगे, वह कहीं भी नहीं है। और छोटे-छोटे प्राणी हैं, उनकी संख्या अनंत है। उसमें छोटी सी संख्या का यह मनुष्य है ।

मनुष्य का यह जो ह्यूमन कार्नर है, यह तो छोटा सा कोना है, इस जगत में हम अ पने को न मालूम क्या समझ बैठे हैं। अपने को न मालूम क्या सोच बैठे हैं। यह मनुष य भी बहुत थोड़े से दिन जिता है—कोई सत्तर अस्सी वर्ष, ज्यादा से ज्यादा सौ वर्ष। इस अनंत विश्व के विस्तार में सौ वर्ष की कोई गणना नहीं, कोई कीमत नहीं, क ोई जगह नहीं। पृथ्वी को बने ही कोई दो अरब वर्ष हो गए और पृथ्वी बहुत नया आगमन है जगत में। अरबों खरबों वर्ष पीछे है। उनकी शृंखला का कोई अंत नहीं। उतना ही समय आगे, अनंत, इटर्नल, कोई अंत नहीं। उसमें एक छोटे से क्षण मग, एक आदमी जी लेता है और न मालूम क्या सोच लेता है। स्पेस के खयाल से भी आदमी ना कुछ है, टाइम के खयाल से भी आदमी ना कुछ है।

धार्मिक व्यक्ति मैं उसे कहता हूं, जो अपने अपने इस ना कुछ होने के अनुभव को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन धार्मिक व्यक्ति की कथा उलटी रही है। धार्मिक घोषण ा करता है, अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म, मैं हूं ईश्वर, मैं हूं आत्मा, मैं हूं अनंत आत्मा, मैं हूं मोक्ष का अधिकारी, मैं यह हूं, मैं वह हूं! धार्मिक व्यक्ति इन बातों की घोषण ा करता है! ऐसे व्यक्ति को मैं धार्मिक नहीं कहता धार्मिक व्यक्ति वह है जो अपनी इस नथिंगनेस को, ना कुछ होने को अनुभव कर ले। जिस दिन यह ना कुछ होना अनुभव हो जाता है, उसी दिन जीवन के बंद द्वार खुल जाते हैं और सब कुछ होने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। लेकिन ना कुछ होने का अनुभव अत्यंत प्राथमिक है। ि बलकुल पहली सीढ़ी है कि हम जानें कि हम कुछ भी नहीं हैं। लेकिन यह हमें पता लगना कठिन हो जाता है, क्योंकि हम मनुष्यों के बीच में जीते हैं। हम सबका भ्रम चूंकि समान है, इसलिए उस भ्रम का कभी खंडन नहीं होता। हम सब एक दूसरे के भ्रम के पोषक बनते चले जाते हैं।

जब पहली बार गेलीलियों और उसके साथियों ने कहा कि सूरज पृथ्वी का चक्कर न हीं लगता है, पृथ्वी ही चक्कर लगाती है सूरज के तो मनुष्य के अहंकार को बड़ा धक्का पहुंचा। धर्मगुरुओं ने कहा, यह कैसे हो सकता है? परमात्मा ने विशेष रूप से मनुष्य को बनाया है और सारा जगत मनुष्य के उपभोग के लिए बनाया है। तो ि जस पृथ्वी पर मनुष्य रहता है, पह पृथ्वी सूरज के चक्कर कैसे लगा कसती है, सूर ज ही चक्कर लगाता है पृथ्वी के। गेलीलियो को बुला कर अदालत में कहा गया कि माफी मांग लो, ऐसी भूल की बातें मत करो। आदमी जिस पृथ्वी पर रहता है, व ह कैसे सूरज का चक्कर लगा सकती है, सूरज ही चक्कर लगाता है।

लेकिन धीरे-धीरे जितनी हमारी समझ बढ़ी, पता चला कि पृथ्वी सेंटर नहीं है विश्व का कि सारा विश्व उसका चक्कर लगाए। पृथ्वी को सेंटर मानने को खयाल हमें पै

दा हुआ था, क्योंकि हम अपने को सेंटर मानने के खयाल में हैं। हम जगत के केंद्र हैं, सारा जगत हमारे ईर्द गिर्द चक्कर लगाता है सब कुछ हैं, बीच में यह जो मनुष्य है मनुष्य है, यह केंद्र है और बाकी सारा जगत चक्कर लगाता है। हजारों वर्षों से, धार्मिक व्यक्ति यह कहते रहे हैं कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि किन्हीं और प्राणियों के बिना पूछे ही हम यह घोषणा करते रहे हैं कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। न तो हमने चींटियों से पूछा है, न हमने पक्षियों से पूछा है। यह इकतरफा गवाही हमने स्वीकार कर ली है। अपने ही मुंह से कहते रहे हैं कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। वह सरताज है सृष्टि का। बिना किसी प्राणी से पूछे हमने यह घोषणा कर दी है और चूंकि किसी प्राणी को इस घोषणा का पता भी नहीं है, इसीलिए कोई प्रतिवाद भी नहीं आता है, कोई उनका भी नहीं करता है।

हमने अपने कोने में बैठे हुए घोषणाएं करते रहते हैं कि हम यह हैं, हम वह हैं। अगर पशु पक्षियों से पूछा जाए और किसी दिन हम जान सकें कि वे क्या सोचते हैं तो शायद ही कोई ऐसे प्राणी की जाति मिले, जो अपने मन में यह न सोचती हो कि हम सर्वश्रेष्ठ हैं। चींटियां सोचती होंगी हम, बंद सोचते होंगे हम। डार्विन ने कह दिया है कि मनुष्य विकसित हुआ है बंदरों से। अगर बंदरों से पूछा जाए तो बंदर यह कभी मानने को राजी न होंगे कि आदमी उनके ऊपर एक विकास है। वह तो यही मानेंगे कि आदमी जो है, वह हमारा एक पतन है। हम दरख्तों पर कूदते, छलांगते हैं, आदमी जमीन पर सरता है। यह हमारा पतन है, हमारी जाति से कुछ लोग पतित हो गए हैं नीचे और वे आदमी हो गए हैं। यह एवोलूशन नहीं है। अगर बंदरों का कोई डार्विन होगा तो इसको एवोलूशन या विकास मानने को तैयार हनीं होगा कि आदमी विकसित हो गया है। लेकिन आदमी मानने को राजी हो गए।

आदमी के अहंकार को जो भी चीज स्पष्ट करती है, वह मानने को एकदम राजी हो जाता है। पृथ्वी केंद्र थी, मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। लेकिन धीरे-धीरे रोज-रोज ये बातें छिनती चली गयी। विज्ञान से रोज-रोज की। पहली चोट यह हुई कि पृथ्वी केंद्र न रही। जिस दिन पृथ्वी केंद्र न रही, उसी दिन बहुत बड़ा धक्का मनुष्य के अहंकार को पहुंचा।

हम सोचते थे कि मनुष्य के भीतर जितना घुसेंगे, उतना ही परमात्मा उपलब्ध होता, उतना ही आत्मा का दर्शन होगा। इधर आया फ्रायड, उसने कहा कि मनुष्य के भीतर जितना घुसो, सिवाय सैक्स कुछ उपलब्ध होता है? बहुत घबराहट सारी दुनिया में फैली। आदमी ने फिर इनकार किया कि कैसी फिजूल की बातें हैं। भीतर तो है परमात्मा और यह फ्रायड कहता है कि भीतर है सैक्स। यह सब बड़ी गलत बातें हैं। लेकिन जितनी हमारी समझ बढ़ी, पता चला कि आदमी के सामान्य केंद्र पर सैक्स ही है। वह उसी से जन्मता है, उसी में जीता है, उसी के लिए जीता है और उसी में समाप्त हो जाता है। और एक बड़ा धक्का लगा और एक केंद्र अहंकार का टूट गया।

और तीसरा बड़ा धक्का लगा जो विराट विश्व की खोजबीन शुरू हुई और पाया कि अंतहीन सीमाएं हैं जगत की। कहीं कोई अंत होता नहीं, फैलता जाता है, फैलता जाता है जगत, कहीं कोई जगह नहीं आती, जहां हम कहें कि यहां समाप्त हो गया। सोचते थे हम, तारे हमारे बहुत निकट हैं, रात को दिखाई पड़ते हैं, लेकिन जैसे-जैसे समझ बढ़ी, पता चला, तारे हमसे बहुत दूर हैं। इतनी दूर हैं कि उनकी गणना भी करना बहुत कठिन है।

सबसे करीब का जो तारा है हमसे, उसकी रोशनी भी आने में हम तक चार वर्ष लग जाते हैं। और रोशनी की गति साधारण नहीं होती, एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील होती है। एक सेकेंड में प्रकाश की किरण एक लाख छियासी हजार मील चलती है। जो सबसे करीब का तारा है, उसकी किरण चले आज तो चार वर्ष बाद यहां पहुंचेगी। दूर से दूर के जो तारे हैं, उनकी रोशनी तब चली थी जिस दिन पृथ्वी बनी, दो अरब वर्ष पहले, अभी तक पहुंची नहीं। उनके आगे भी तारे हैं, वे हमें दिखाई नहीं पड़ते, क्योंकि उनकी रोशनी हम तक कभी पहुंची ही नहीं है। रात को जो तारे हम देखते हैं, वे जहां हमें दिखाई पड़ते हैं, वहां नहीं होते। कोई तारा वहां नहीं होता। रात बिलकुल झूठी है। कोई तारा वहां नहीं है, जहां हमें दिखाई पड़ रहा है। वहां कभी था, उसकी रोशनी इतनी देर में आयी कि इतनी देर में तो वह न मालूम कहां चला गया, कितनी यात्रा कर गया, अब वहां नहीं है। जो तारा सबसे करीब है, वह चार वर्ष पहले वहां था। अब वहां नहीं है। चार वर्ष तो वह अरबों मील चल चुका। और हो सकता है, चार वर्ष में टूट कर नष्ट भी हो गया हो। तो भी हमें दिखाई पड़ता है, क्योंकि चार वर्ष पहले वह वहां था। उसकी रोशनी वहां से चली थी। वह अब हमारी आंख पर आयी है तो हमें दिखाई पड़ रहा है वहां।

पूरी रात झूठी है, कोई तारा वहां नहीं है जहां हमें दिखाई पड़ रहा है। कोई तारा साठ वर्ष पहले वहां था, कोई हजार वर्ष, कोई लाख वर्ष, कोई करोड़ वर्ष, कोई अरब वर्ष। दो अरब वर्ष पहले जो तारे थे, उनकी रोशनी तो धीरे-धीरे हम तक पहुंचेगी। यह सारी रात झूठी है। ये तारे इतने दूर हैं, इनकी दूरी ने घबराहट पैदा कर दी है। इनके विस्तार ने, यह जो इतना एक्सपैंडिंग जगत है, इसने आदमी को एकदम छोटे से छोटा कर दिया। वह कहीं भी नहीं रह गया, उसकी कोई गणना नहीं रह गयी, उसका कोई हिसाब नहीं रह गया। धार्मिक आदमी को बड़ी चोटें पहुंची हैं।

मेरी दृष्टि से तो धार्मिक आदमी को चोट पहुंचनी नहीं थी, बल्कि धार्मिक आदमी की गहराई बढ़नी थी इन बातों से, क्योंकि इन बातों से, यह पता चलना शुरू हुआ कि हम कुछ भी नहीं हैं। और हमारा यह पुराना भ्रम टूटा कि हम सब कुछ अपने को मान कर बैठे थे। उस भ्रम को धक्के लगे, उससे सारी दुनिया का धार्मिक जगत एकदम हिल गया, कांप गया। उसे लगा कि यह आदमी तो कुछ भी नहीं है। तो फिर गहरी घोषणाएं, हमारी अमरता की घोषणाएं, हमारी आत्मा की, ब्रह्मा की,

ईश्वर की, मोक्ष को पाने की घोषणाएं इनका क्या होगा? लेकिन मेरी दृष्टि से विज्ञ
ान की इन तीन वर्षों की खोजों ने, असली धार्मिक आदमी को पैदा करने की भूमि
का उपस्थित कर दी।

असली धार्मिक आदमी का पहला लक्षण है अपने ना कुछ होने को जान लेना। और
जिस दिन, कोई अपनी पूरी नथिंगनेस परिपूर्णता में जान लेता है, उसी दिन शून्य क
ो उपलब्ध हो जाता है।

आज की सुबह, इस संबंध में मैं थोड़ी सी बात आपसे कहना चाहता हूं। हम कुछ
भी नहीं हैं, यह बोध हमारा गहरे से गहरा हो जाना चाहिए। यह बोध हमारा निरं
तर तीव्र से तीव्र होते जाना चाहिए कि कुछ भी नहीं हूं। जिंदगी को हम ऐसे देखेंगे
तो हमको दिखाई पड़ जाएगा कि मैं कुछ भी नहीं हूं।

यह दिखाई पड़ने में कौन सी कठिनाई है? मृत्यु रोज इसकी खबर लाती है कि ह
म कुछ भी हनीं हैं। लेकिन हम मृत्यु को कभी गौर से देखते नहीं कि वह क्या खब
र लाती है? मृत्यु को तो हमने छिपा कर रख दिया है। मरघट गांव के बाहर बना
दिया है, ताकि दिखाई न पड़े। किसी दिन आदमी समझदार होगा, धार्मिक होगा त
ो मरघट बिलकुल गांव के चौरस्ते पर बनाएं जाएंगे। रोज दिन में दस दफा, निकल
ते, जाते-आते, दिखाई पड़े मौत तो खयाल में आए कि मौत है।

अभी कोई लाश निकलती है मुर्दा निकलता है, बच्चों को हम घर के भीतर बुला ले
ते हैं कि कोई मुर्दा निकल रहा है, भीतर आ जाओ। मुर्दा निकले और हम मग सम
झ हो तो सब बच्चों को बाहर इकट्ठा कर लेना चाहिए कि देखा यह आदमी मर ग
या और ठीक ऐसे ही हम सब मर जाने को हैं। हमारे ना कुछ होने का बोध, जिस
बात से भी कुछ गहरा होता हो, जिस बात से भी तीव्र होता हो, वह सारी प्रक्रिया
एं हमारे जीवन में वास्तविक धर्म के जन्म का, सत्य के जन्म का, प्रकाश के जन्म
का कारण बनती हैं।

हम ना कुछ हैं, यह किन-किन बातों से खयाल में गहरा हो सकता है? इस बात क
ी पूरी प्रक्रिया को ध्यान से समझना चाहिए जिसने अपने ना कुछ होने का, आपको
रोज-राज पता चलता चला जाए। हमारी हालत उलटी है। हम कुछ हैं, इस बात
की कोशिश में जीवनभर प्रयास करते रहते हैं।

एक बोधिधर्म नाम का भिक्षु था। वह कोई चौदह सौ वर्ष पहले चीन गया। वहां के
सम्राट वू ने उसका स्वागत किया। वू ने जो वहां का सम्राट था, बौद्धधर्म के प्रचार
के लिए करोड़ों रुपए खर्च किए थे। हजारों भिक्षुओं को रोज भोजन देता था। हजार
ों मंदिर बनवाए थे, बुद्ध की लाखों प्रतिमाएं बनायी थीं। एक ही मंदिर बनवाया था
उसने, जिसमें बुद्ध की दस हजार प्रतिमाएं रखवाई थीं। वह दस हजार बुद्धों वाला
मंदिर अब भी शेष है। तो जब बोधिधर्म चीन पहुंचा तो वू भी उससे मिलने आया
और उसने कहा, क्या मैं पूछ सकता हूं, मैंने इतने मंदिर बनवाए, इतने भिक्षुओं
को मैंने दान दिया, धर्म की मैंने इतनी प्रभावना की, दूर-दूर तक धर्मशास्त्र बंटवाए,
धर्म का प्रचार करवाया, इन सबका फल क्या है।

बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं। सम्राट तो बहुत हैरान हो गया। उसके भिक्षुओं ने उसको यही समझाया था कि इसका फल है, तुम्हें मोक्ष मिल जाएगा, स्वर्ग मिल जा एगा। यह सब समझाया था और बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं, फल तो कुछ भी नहीं है। लेकिन पाप जरूर तुम्हें लगा। वू ने कहा, क्या कहते हैं आप! इस सबसे मुझे पाप लगेगा? बोधिधर्म ने कहा, इससे आपका यह खयाल मजबूत हुआ कि मैं कुछ हूं, मैंने इतना किया, इतने मंदिर बनवाए, इतने धर्मशास्त्र छपवाए, इतना प्रचा र करवाया। इससे आपको यह खयाल मजबूत हुआ कि मैं कुछ हूं।
और जगत में एक ही पाप है, इस बात का बोध कि मैं कुछ हूं और एक ही पुण्य है, इस बात का अनुभव कि मैं कुछ भी नहीं हूं।
वू तो नाराज हो गया, क्योंकि जिसने इतना किया हो और भिक्षु उससे कहे, इसका कोई फल नहीं है, उलटा पाप है। तो वह नाराज होकर चला गया और उसने आ ज्ञा दे दी कि बोधिधर्म उसके राज्य में नहीं ठहर सकेगा। बोधिधर्म को आज्ञा आयी ि क वू ने कहलवाया है कि तुम इस राज्य में नहीं ठहर सकोगे।
बोधिधर्म ने कहा, वह गलती में है। वह अगर चाहता कि मैं यहां ठहरूं तो भी मैं ठ हरने वाला नहीं था। ऐसे पापी राज्य में मैं रुकूंगा भी कैसे? उसको कहना कि वह चाहता भी कि मैं ठहरूं तो मैं ठहरने वाला नहीं था। उसकी आज्ञा की कोई जरूरत नहीं, मैं तो जा ही रहा हूं। उसके राज्य को छोड़कर बोधिधर्म दूसरे राज्य में चला गया। नदी के उस पार निकल गया।
अब वू की मृत्यु आयी, कोई दस वर्ष बाद! रोज-रोज वह सोचता रहा। उस बोधिध र्म की बात उसके प्राणों को छेदती रही रोज-रोज कि उसने कहा है कि कोई फल नहीं है इसका। बल्कि पाप है, क्योंकि यह खयाल पैदा हो गया है कि मैं कुछ हूं। रो ज-रोज वह सोचता रहा। फिर जैसे-जैसे मौत करीब आई, उसे लगना शुरू हुआ कि मैं तो ना कुछ हो जाऊंगा। और जब कल मृत्यु मुझे ना कुछ कर ही देगी तो मेरा यह खयाल कि मैं कुछ था, मैंने इतना किया था, मैं यह था, मैं वह था, इसका क या मूल्य रहेगा, क्या अर्थ रहेगा?
मरते वक्त उसने खबर भिजवायी, एक संदेशवाहक दौड़ाया कि जाओ और बोधिधर्म को बुला लाओ। मुझे अनुभव हो रहा है कि शायद वही ठीक कहता था। मैं तो डू बता जा रहा हूं, सब विलीन होता चला जा रहा है। बोधिधर्म के पास खबर पहुंची। बोधिधर्म ने कहा, मैं चलता तो हूं, लेकिन जिसकी खबर तुम लेकर आए हो, वह समाप्त हो गया। और बहुत देर हो गयी। जब मैंने कहा था, अगर वह तभी जान लेता कि मैं कुछ भी नहीं हूं तो परम जीवन का उसे अनुभव हो जाता।
मृत्यु के क्षण में तो सभी जानते हैं कि हम कुछ भी नहीं हैं, लेकिन जीवन में जो जान लेते हैं, वे धन्यभागी हैं। जीवन में ही जो इस सत्य को जान लेता है कि मैं कु छ भी हनीं हूं। मृत्यु में तो इस सत्य को जान लेता है कि मैं कुछ भी नहीं हूं। मृत यु में तो इस सत्य का सभी को जान ही लेना पड़ता है। लेकिन तब बहुत देर हो

गयी, तब कोई क्रांति का समय न रहा। लेकिन जीवन में ही जो जान लेता, जीते जी जो जान लेता है कि मैं कुछ भी नहीं हूं, वही धन्यभागी है।

च्वांग्त्से का शायद आपने नाम सुना होगा। एक अदभुत फकीर था। एक गांव से गुज र रहा था। गांव के बाहर, सांझ का समय था, अंधेरा था, एक आदमी की खोपड़ी से उसका पैर टकरा गया। मरघट था। उसने खोपड़ी को उठाकर, सिर पर लगा लि या और खोपड़ी को घर ले आया, अपने झोपड़े पर रख लिया। उसके मित्रों ने, उस के शिष्यों ने उससे पूछा कि इस खोपड़ी को यहां किसलिए ले आए हो? उस च्वांग्त से ने कहा, मुझसे बड़ी भूल हो गयी है। मरघट से मैं जा रहा था और वह छोटे लो गों का मरघट न था, बड़े लोगों का मरघट था। मरघट भी अलग-अलग होते हैं, छ ोटे आदमियों के अलग, बड़े आदमियों के अलग, जिंदगी में, छोटे और बड़े तो अल ग होते ही हैं, मृत्यु में भी हम फर्क कर लेते है, यह सम्राटों का मरघट है, यह दि रद्रों का मरघट है! उसने कहा, वह बड़े लोगों का मरघट था। यह किसी बड़े आदम ी की खोपड़ी होनी चाहिए। हो सकता है, यह किसी सम्राट की खोपड़ी हो। अगर य ह आदमी जिंदा होता तो आज मेरी मुश्किल हो जाती। इसकी खोपड़ी में मेरा पैर लग गया कुछ भी हो, मर गया, फिर भी माफी तो मांग ही लेनी चाहिए। बड़े आद मी की खोपड़ी है, इसलिए इसको मैं ले आया, सम्मान से घर में रखूंगा। रोज माफी मांग लूंगा और फिर च्वांग्त्से ने कहा कि यह खोपड़ी यहां पास रखी रहेगी तो मुझे यह खयाल बना रहेगा कि आज नहीं कल, मेरी खोपड़ी की भी यही गति हो जाने वाली है। आज नहीं कल, किसी मरघट पर मेरी खोपड़ी पड़ी रहेगी और लोगों के जूते और लात उस पर लगते रहेंगे। जिस खोपड़ी के लिए मैं इतने सम्मान की अ पेक्षा करता हूं, कल वह मिट्टी में मिल जाने को है। यह सत्य मुझे खयाल में बना र हेगा, इसलिए इस खोपड़ी को मैं पास ही रखूंगा, और जिस दिन से इस खोपड़ी को मैंने अपने पास रखा, अगर अब कोई जिंदा भी मेरी खोपड़ी में आकर लात मार दे तो मैं ही उससे माफी मांग लूंगा कि आपके पैर को चोट तो नहीं लग गयी है, क्य ोंकि यह लात तो लगनी ही है कल। मैं कब तक बचाऊंगा यह खोपड़ी, कल लातों में चली जाने को है।

यह जो सीधा सत्य है, जीवन के ना कुछ में बिखर जाने का, जाते जी जो इस सत्‌ य को जानने में समर्थ हो जाए, उसके जीवन में एक क्रांति हो जाती है। उसी क्रांति को मैं धर्म कहता हूं। उसके जीवन में दुख का अंत हो जाता है, क्योंकि दुख की जड़ इस खयाल में है कि मैं कुछ हूं। और जिस आदमी को इसका खयाल जितना ब. ढता है कि मैं कुछ हूं, वह आदमी उतने ही गहरे दुख में उतरता चला जाता है। दु ख का और कोई आध्यात्मिक अर्थ नहीं है, सिवाय इसके कि मैं कुछ हूं। जितनी ती व्रता से यह सांठ मेरे मन में होती है कि मैं कुछ हूं, उतनी ही यह गांठ दुख देती है।

जिस आदमी का यह खयाल मिट जाता है कि मैं कुछ हूं, उसे दुख देना कठिन हो जाता है, उसे दुख नहीं दिया जा सकता है। और जिस दिन दुख की सारी संभावना

विलीन हो जाती है भीतर से, उसी दिन आनंद की वर्षा शुरू हो जाती है। आनंद को कोई खोज नहीं सकता। आनंद कहीं मिलता नहीं है कि कोई चला जाए और भ र लाए। आनंद कोई दे नहीं सकता है किसी को। लेकिन दुख को हम खोजते हैं। दु ख को हम इकट्ठा करते हैं, दुख की हम गांव बांध लेते हैं और दुखी होते रहते हैं। और दुख विदा हो जाए तब जो विशेष रह जाता है, वही आनंद है।

और दुख किस गांठ पर इकट्ठा होता है? मैं के अतिरिक्त, अहंकार के अतिरिक्त दुख किसी और गांठ पर इकट्ठा नहीं होता। लेकिन हमारा सारे जीवन का उपक्रम, इस दुख को ही इकट्ठा करने में, इस दुख को ही बांध लेने में लगा है। हम मंदिर भ ी बनाते हैं तो वहां भी हमारे अहंकार की पूजा होती है कि मैंने बनाया है यह मंदि र। हम सेवा भी करते हैं तो वह भी अहंकार की ही पूजा होती है कि मैंने की है यह सेवा हम प्रेम भी करते हैं तो वह भी घोषणा अहंकार की होती है कि मैं कर रहा हूं प्रेम। और तब प्रेम भी दुख लाता है, सेवा भी दुख लाती है, धर्म भी दुख ल ाता है, मंदिर और मस्जिद भी दुख लाते हैं। जहां मैं है, वहां दुख अनिवार्य है।मैं क ी छाया है दुख। हम सब मुक्त होना चाहते हैं दुख से। लेकिन जो मैं से मुक्त नहीं होना चाहता, वह दुख से मुक्त नहीं हो सकता। हम दुख से तो बचना चाहते हैं औ र मैं भरना चाहते हैं। ये इतनी कंट्राडिक्टरी, ये इतनी विरोधी बातें हैं कि इन दोनों का कोई मेल नहीं होता।

क्या यह संभव नहीं है कि हम यह जानने में समर्थ हो जाए, सफल हो जाए कि मैं कुछ भी नहीं हूं? इसे बहुत रूपों में विचार करें तो आदमी सफल हो सकता है। पह ला तो मैंने यह कहा कि स्थान, स्पेस के विस्तार को निरंतर खयाल में लेना चाहिए । लेकिन स्पेस का जो विस्तार है, उससे हमारे सब संबंध छूट गए हैं। आदमी की ब नायी हुई बस्तियों में स्पेस का कोई पता नहीं चलता। बंबई जैसी बस्ती में कब चांद निकलता है, कब डूबता है, कोई पता नहीं चलता। आदमी के मकान इतने बड़े हैं कि आकाश उसमें छिप गया। अगर कोई घड़ी आधा घड़ी को जमीन पर चुपचाप लेट जाए और आकाश के विस्तार को देखता रहे तो उसे पता चलेगा कि मैं कुछ भी नहीं हूं, मैं कहां हूं!

अनंत के विस्तार की प्रतीति, चारों तरफ जो दूर तक असीम फैला है उसका अनुभ व, उसका बोध, उसके प्रति जागना, मैं कुछ भी नहीं हूं, इसका खयाल लाएगा। ए क विस्तार स्पेस का है, दूसरा विस्तार टाइम का है। समय की भी, काल की भी क ोई सीमा नहीं है। पीछे अनंत है, आगे अनंत है। उसमें मैं कहा हूं? इस काल की अ नंत धारा मैं कहां हूं। इस काल की अनंत गंगा में मेरी बूंद कहां है? एक सपने में भी ज्यादा नहीं है। यह दो विस्तार—समय का और स्थान का, आकाश का और का ल का, इन दोनों विस्तारों को गहराई में देखने में, मैं कुछ भी हनीं हूं, इसका अनु भव होना शुरू होता है। इन दोनों पर मेडीटेशन, इन दोनों पर ध्यान, रोज-रोज गह रा करने की जरूरत है। उठते-बैठते, चलते-सोते, इस बात का पूरा खयाल रखना जरूरी है—रिमेंबरिंग, इसका स्मरण कि मैं कहा हूं। मेरे होने के दो बिंदु हैं जहां मैं

होता हूं। टाइम और स्पेस जहां कटते हैं, वहीं मैं हूं। और अगर ये दोनों अनंत हैं त ो मेरे होने का क्या अर्थ है? थोड़े से समय का क्या मूल्य है, जब मैं जाता हूं? औ र थोड़े से स्थान का क्या मूल्य है, जिसको मैं घेरता हूं? कल मौत आएगी, न तो मैं स्थान घेरूंगा और न समय घेरूंगा। वह दोनों बातें समाप्त हो जाएंगी। इन दोनों के ऊपर निरंतर ध्यान, इन दोनों का निरंतर स्मरण, इन दोनों की निरंतर प्रतीति बहुत अदभुत—बहुत अदभुत गहराई में, मौन में ले जाती है। लेकिन करें तो ही खय ाल में आ सकता है, नहीं तो नहीं आ सकता है।

एक तो इन दो बातों के ध्यान के लिए आपसे कहूंगा। इनको किसी भी क्षण भूलना उचित नहीं है। यह दोनों तरफ का अनंत विस्तार हमारे खयाल में बना रहना चाहिए। और अगर इन दो बातों का बोध स्पष्ट हो जाए तो आप एक क्रांति अपने भी तर होती हुई पाएंगे। आपको पता भी नहीं चलेगा कि भीतर कोई व्यक्ति बदलने ल गा और एक दूसरे व्यक्ति का जन्म शुरू हो गया। गहरे अर्थों में तो ये दो बोध हैं, लेकिन इनके आसपास और बहुत से बोध सहयोगी हो सकते हैं।

बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहते थे कि जाकर कभी-कभी मरघट पर बैठा करो। एक भिक्षु ने उनसे पूछा कि मरघट पर किसलिए तो बुद्ध ने कहते, वहां जीवन अपनी पू र्णता को उपलब्ध होता है।तुम भी उसी तरफ रोज चले जा रहे हो, उसका शायद तुम्हें वहां खयाल आए। जब वहां चिता चलती हो तो बैठ कर देखा करो, शायद ि कसी दिन तुम्हें दिखाई पड़ जाए कि चिता पर कोई और नहीं, तुम्हीं चढ़े हुए हो। थोड़े देरी होगी। आज कोई और चढ़ा है, कल मैं चढूंगा, परसों कोई और चढ़ेगा। तो शायद किसी दिन चिता को देखकर तुम्हें खयाल आ जाए कि कोई और नहीं, तुम्हीं चढ़े हुए हो। तो भिक्षुओं से अनिवार्य रूप से वह कहते थे कि मृत्यु के संबंध में वे ध्यान करें।

दूसरी बात, जीवन के सतत परिवर्तन—कल मैं कुछ और था, आज मैं कुछ और हूं , परसों मैं बच्चा था, आज जवान हूं, कल बूढ़ा हो जाऊंगा। एक दिन मैं नहीं था और एक दिन मैं फिर नहीं हो जाऊंगा यह जो फ्लक्स, यह जो धारा है निरंतर पि रवर्तन की, वह हेराक्लत तो कहता था एक ही नदी में दुबारा नहीं उतर सकते। ज ब तक हम दुबारा उतरने जाते हैं, नदी बह गयी होती है। जब तक हम दुबारा उत रने जाते हैं तब तक हम बदल गए होत हैं। एक ही नदी में दुबारा हनीं उतर सक ते। हेराक्लतु से कोई मिलने आता और जब जाने लगता तो हेराक्लतु उससे कहता, मेरे मित्र! खयाल रखना, तुम जो आए थे, वही वापस नहीं लौट रहे हो और तुम जिससे मिले थे, अब आकर उसी से विदा नहीं ले रहे हो। तुम भी बदल गए, मैं भी बदल गया। चौबीस घंटे, सब बदल जाता है। वहां कुछ भी स्थिर नहीं है।

एडिंगटन ने एक बार मजाक में यह कहा कि भाषा के कुछ शब्द बिलकुल ही झूठे हैं। आक्सफोर्ड में वह बोलता था तो किसी ने पूछा कि जैसे तो उसने कहा, रेस्ट। रे स्ट बिलकुल झूठा शब्द है। कोई चीज ठहरी हुई है ही नहीं। सारी चीजें बदलती जा रही है। कोई चीज स्थिर नहीं है। कोई चीज ठहरी हुई नहीं है, कोई चीज चढ़ी हु

ई नहीं है। जिसको आप खड़ा हुआ देख रहे हैं, वह भी खड़ा हुआ नहीं है, उसके भीतर भी सब भागा जा रहा है। ये दीवालें मकानों की आपको खड़ी दिखाई पड़ रह ी हैं, ये दरख्त आपको ठहरे हुए मालूम पड़ रहे हैं, यह बिलकुल झूठी बात है। यह दरख्त ठहरा हुआ नहीं है। नहीं तो यह दरख्त कभी बूढ़ा नहीं हो पाएगा। यह भागा जा रहा है भीतर। यह बूढ़ा होता चला जा रहा है। यह दीवाल ठहरी हुई नहीं है, यह भीतर बदलती जा रही है। नहीं तो यह मकान कभी गिर नहीं पाएगा। सब ब दल रहा है। इस बदलाहट का पूरा बोध अगर आपको है तो आपको यह पता नहीं चलेगा कि मैं हूं, क्योंकि जहां सब बदल रहा है, वहां मैं के खड़े होने की जगह कह ां है? जहां कोई चीज खड़ी नहीं है, जहां सब फ्लक्स है, जहां सब प्रवाह है, वहां मैं कहां हूं? इसलिए बुद्ध ने तो एक बहुत बड़ी अदभुत बात कहनी शुरू की थी। उन्होंने कहा था, आत्मा है ही नहीं, क्योंकि आत्मा के लिए खड़े होने की जगह कहा है? लोग नहीं समझ पाए कि यह क्या बात उन्होंने कहीं और बुद्ध आत्मा और अहंकार का एक ही अर्थ करते थे। वह कहते, इस बात का भाव कि मैं हूं, यही अहंक ार है, यही आत्मा है। अगर सब कुछ बदल रहा है तो मैं खड़े होने के लिए कहां जगह पाऊंगा? मेरे स्थिर होने की कहां गुंजाइश है?

सांझ को हम एक दीया जला देते हैं। सुबह हम कहते हैं कि वही दिया अब तक ज ल रहा है, उसे बुझा दें। झूठी बात हम कहते हैं। सांझ जो दीया जलाया था, वह त ो कभी का बुझ गया। लौ हर क्षण बदलती जाती है। दूसरी लौ आ जाती है, पहली लौ बुझ जाती है। तीसरी आ जाती है, चौथी आ जाती है। इतनी तीव्रता से ज्योति बुझती जा रही है, धुंआ होता जा रहा है। दूसरी ज्योति जलती आ रही है। सांझ जो ज्योति हमने जलाया, फिर सुबह हम उसी को नहीं बुझाते। रात भर ज्योति ब दलती रही, बदलती रही, रात भर ज्योति बदलती रही। वही ज्योति सुबह नहीं है। जो आप पैदा हुए थे, सब बदलता रहा है—ज्योति की तरह जन्म से लेकर मृत्यु त क सब बदलता रहा है। इसी पूरी बदलाहट को बोध हो तो आपको पता नहीं चलेग ा कि मैं हूं।

तो यह चार बोध—एक तो समय का विस्तार, एक आकाश का विस्तार, क्षण-क्षण परिवर्तन और अंततः मृत्यु—इन चार पर जो मेडिटेट करता है, जो ध्यान करता है, वह उस परम अवस्था को उपलब्ध हो जाता है, जहां उसका पता चल जाता है जो काल से भी अनंत है और जो आकाश से भी विस्तीर्ण है और जिसकी कोई मृत्यु नहीं और जिसमें कोई परिवर्तन नहीं। लेकिन इन चार के बोध से उसका पता चलत ा है जो इन चारों से भिन्न और पृथक है।

इन चारों के बोध से उसका क्यों पता चलता है? असल में पता चलने के लिए, कि सी भी चीज के ठीक-ठीक बोध के लिए, विपरीत की पृष्ठभूमि चाहिए। स्कूल में ह म बच्चों के लिए काले तख्ते, ब्लैकबोर्ड बना देते हैं। सफेद दीवाल पर भी, सफेद ख ड़िया से लिख सकते हैं। लेकिन तब बच्चे को कुछ दिखाई न पड़ेगा और अगर सफे द खड़िया से सफेद दीवाल पर कोई शिक्षक लिखता हो तो हम कहेंगे पागल है। ब्लै

कबोर्ड हम बना देते हैं और सफेद खड़िया से उस पर लिखते हैं, क्योंकि काले की पृष्ठभूमि में सफेद की रेखाएं उभर कर स्पष्ट हो आती हैं। अगर हमें उसे खोजना ह ो जो अनंत है और असीम है, उसे खोजना हो जिसमें कोई परिवर्तन कभी नहीं होत ा, उसे खोजना हो जिसकी कभी मृत्यु नहीं होती, उसे खोजना हो जिसकी कभी मृत यु नहीं, उसे खोजना हो जो शाश्वत है, उसे खोजना हो जो सत्य है तो हमें उसका बोध, उसकी पृष्ठभूमि खड़ी करनी होगी जो कि निरंतर परिवर्तन में है, जो कि नि रंतर मर रहा है। उसका बोध है, उसके काले तख्ते पर, वह जो बिलकुल भिन्न औ र विपरीत है, उसकी सफेद रेखाएं उभर आएगी और दिखाई पड़ जाएंगी। जितनी अंधेरी रात होती है, तारे उतने ही चमकदार दिखाई पड़ते हैं। तारे तो दिन में भी रहते हैं, लेकिन वे दिखायी नहीं पड़ते। तारों को देखने के लिए रात की प्रतीक्षा क रनी पड़ती है, क्योंकि दिन की रोशनी में तारों के दिखाई पड़ने की कोई जगह नहीं रह जाती। लेकिन रात के अंधकार में वे चमकने लगते हैं, वे अलग दिखाई पड़ने लगते हैं।

तो ये चार स्मरण जितने प्रगाढ़ हो जाएंगे, उतना ही उन चारों से जो भिन्न है, ज ो नानटेम्पोरल है, जो नानस्पेशियल है, जो न समय के भीतर है और न स्थान के भ ीतर है, जो अनचेंजिंग है, अनमूविंग है, जो न बदलता है और न परिवर्तित होता है, जो अनडाइंग है, जिसकी कभी कोई मृत्यु नहीं होती, उसका अनुभव, उसकी प्र तीति, उसका साक्षात हो सकता है। उसके लिए यह तैयारी करनी अत्यंत आवश्यक है। और जिस दिन उसका अनुभव होता है, उसी दिन जीवन वस्तुतः जीवन बनता है। उसी दिन जीवन आलोक से मंडित होता है, उसी दिन जीवन समस्त बंधनों से शून्य और रिक्त हो जाता है। उसी दिन हम उसे जान पाते हैं, जिसको जान लेने के बाद फिर कुछ जानना और पाना शेष नहीं रह जाता। वही है उपलब्धि, उसी की दिशा में, उसी सागर की खोज में, हम सबके जीवन की नदियां बही जाती है।

लेकिन जो इन नदियों को ही सब कुछ समझ लेता है, वह फिर सागर तक पहुंचने से वंचित रह जाता है। इन चार चीजों का बोध आपके भीतर नथिंगनेस को, नानबी इंग को, नहीं हूं मैं कुछ, इस भाव को गहरा करेगा और जिस दिन यह भाव पूर्ण ह ो जाएगा कि मैं कुछ नहीं हूं उसी दिन एक विस्फोट हो जाएगा और उसका पता च लेगा जो मैं हूं, जो सब कुछ है।

कल रात मैंने आपसे कहा कि हम—साधक हमारे जीवन के केंद्र पर हों और साधक का अर्थ है, ना कुछ होने का भाव। कबीर कहते थे, मैं एक बांस की पोंगरी हूं। ज ो संगीत है, वह मुझसे बहता है। मैं उस संगीत को रोकने में बाधा तो बन सकता हूं, लेकिन संगीत को पैदा करने वाला मैं नहीं हूं। बांसुरी अगर गड़बड़ हो तो संगी त पैदा नहीं होगा। लेकिन बांसुरी संगीत की जन्मदात्री नहीं है। जिस दिन हमें पता चलता है कि मैं ना कुछ हूं, उस दिन हम बांस की एक पोंरी रह जाते हैं। और फि र परमात्मा का संगीत, उस बांस की एक पोंगरी से सहज प्रवाहित होता चला जात ा है। फिर कोई बाधा नहीं रह जाती हमारी तरह से। फिर हम पोली बांस की पोंग

री हो जाते हैं। वह जो पोलापन है, वह जो नथिंगनेस है, वह पोलापन है। वह जो ना कुछ जाना है, वह सारी चीज पोली हो गयी। जगह दे दी गयी। अब परमात्मा बह सकता है।

रवींद्रनाथ मृत्युशैया पर थे। उसके दो दिन पहले, किसी मित्र ने उनसे कहा कि आप ने इतने गीत गाए कि आप तो धन्यभागी हैं और आप तो--आपने तो पा लिया उसे , जो पाने जैसा था। रवींद्रनाथ ने कहा, मेरे मित्र, जो गीत मैंने गाए, उनका कोई भी मूल्य नहीं है। लेकिन जिन गीतों को गाते वक्त, मैं मौजूद ही नहीं था, बस, उनका ही थोड़ा सा मूल्य है। और मैंने दो तरह के गीत गाए। एक, जो मैंने गाए, उनका कोई मूल्य नहीं है। दो, जिनको मैंने आया ही नहीं, मैं केवल बांसुरी बन गया, किसी और ने गाया। और मुझ से वे बह गए और प्रवाहित हो गए, उनका मूल्य है। जिन गीतों के लिए लोगों ने मुझे धन्यवाद दिया है, वे मैंने गाए ही नहीं थे। जो मैंने गाए थे, उनमें तो भूल हो गयी है। उनमें बात नहीं है, वह अमृत स्वर नहीं है।

साधक का अर्थ है, इतना खाली हो जाना कि वह समष्टि का माध्यम बन जाए, बांसुरी बन जाए। उससे सारा संगीत बह जाए। साधक का अर्थ है, इतना शून्य, इतना पोला हो जाना कि परमात्मा उससे प्रवाहित हो सके, मार्ग बन जाए। साधक का अर्थ है मार्ग बन जाना, माध्यम बन जाना, केवल बीच का सेतु बन जाना ताकि परमात्मा उससे प्रकट हो सके। वह जो समष्टि है, वह जो सबके भीतर छिपा हुआ प्राणों का संगीत है, वह उसके लिए बांसुरी बन जाए।

यह बांसुरी आप बन सकें, इसकी मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूं। और आपने भी , क्योंकि जो मैंने चार बातें कहीं, वह जो चार स्मरण और ध्यान करने को कहा, अगर उन पर थोड़ा सा भी प्रयास किया तो कोई भी कारण नहीं कि हम क्यों न बन जाए, क्योंकि हम वस्तुतः वही हैं, जो हम बनना चाहते हैं। सिर्फ हमें स्मरण नहीं है, सिर्फ हमें खयाल नहीं है, सिर्फ हमें पता नहीं है। हम उस बंद आंखें किए हुए आदमी की तरह हैं जो सूरज केस सामने खड़ा है और चिल्ला रहा है कि बहुत अंधकार है, मैं क्या करूं, दीया जलाऊं? लेकिन बंद आंखें किए आदमी को दीया जलाने से भी क्या होगा?

जो चिल्ला रहा है कि मैं क्या करूं, मैं क्या न करूं, मैं अंधकार में खड़ा हूं, उससे अगर कोई कहे कि तुम सिर्फ आंख खोल लो तो उसे बड़ी हैरानी होगी कि इतना बड़ा अंधकार और मेरे सिर्फ आंख खोलने से कैसे मिट जाएगा? आंख जैसी छोटी सी चीज, पलक जैसा छोटा सा परदा, इतने बड़े अंधकार को कैसे मिटा देगा, जिससे मैं घिरा हूं? वह कहेगा, मुझे विश्वास आता नहीं आपकी बात पर कि आंख खोलने से इतना बड़ा अंधकार मिट जाएगा। आंख खोलने से अंधकार के मिटने का संबंध ही क्या है? शायद हम समझाने भी बैठें तो उसके खयाल में भी न आए, क्योंकि बात उसकी ठीक है, लाजिकल है। इतनी छोटी सी आंखें, इतनी छोटी सी पलक, इससे इतने बड़े अंधकार का क्या संबंध है? और इतनी सी पलक खोलने से, इतना

बड़ा अंधकार मिट जाएगा क्या? लेकिन काश! वह आंख खोलकर देखे तो पाएगा कि निश्चित ही मिट जाता है। छोटी सी पलक का यह परदा, बहुत बड़ा अंधकार पैदा कर देता है। अहंकार का छोटा सा बोध सारे अंधकार को पैदा करता है। वह अहंकार का परदा हट जाए, वह आंख खुल जाए तो रोशनी है, प्रकाश है, सूरज हमेशा मौजूद है। हम आंख बंद किए हुए खड़े हैं। इसके अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।

परमात्मा करे हमारी यह आंख खुल सके। मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।